अध्याय प्रथम
स्त्री विमर्श अर्थ एवं स्वरूप

आजादी से पहले जब देश औपनिवेशिक दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। उस समय स्त्री विमर्श देश की स्वतन्त्रता के लिए भी जूझ रही थी और अपनी सामाजिक स्वतन्त्रता के लिए भी। ऋग्वेद में कहा गया है कि-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।
व तैत्रास्तु ने पूज्यन्ते सर्वा: तत्र अफला: क्रिया:।।

स्त्री विमर्श, समकालीन साहित्य और पत्रकारिता का आज केन्द्रीय विषय बन चुका है। जाहिर सी बात है नारी विमर्श का ताल्लुक नरों से नहीं। संसार में जब से स्त्री के जीवन और संघर्ष पर विचार आरम्भ हुआ, तब से नारी विमर्श का आरम्भ हुआ। यह विषय गहरी सामाजिकता से जुड़ा हुआ है। इसलिए समाज के पुरूष तत्व को इससे बाहर नहीं धकेला जा सकता।[1] महात्मा गांधी ने भी नारी के आदर्श के विषय में कहा है कि नारी त्याग की मूर्ति है। जब वह कोई चीज शुद्ध और सही भावना से करती है, तब पहाड़ो को भी हिला देती है। मैंने स्त्री को सेवा और त्याग की भावना का अवतार मानकर उसकी पूजा की है। जब तक स्त्री की पारिवारिक और सामाजिक स्थिति का विकास नहीं होगा तब तक समाज के विकास पर प्रश्नचिह्न लगा रहेगा। स्त्री विमर्श और कुछ नहीं आत्मविमर्श, आत्मसम्मान आत्मगौरव समता और समानाधिकार की पहल का दूसरा नाम है। स्त्री को अपने अस्तित्व के बोध ने विमर्श की प्रेरणा दी। पुरूष की एकाधिकारशाही के वातावरण से स्त्री को बाहर लाने का प्रयास ही स्त्री विमर्श है।[2] स्त्रियों के त्याग और सद्भावना के कारण ही जीवन जीने के योग्य बना रहता है। विषम परिस्थितियों में भी नारी अपनी मृदुवाणी से पुरुष को संत्वना देती है जिस कारण पुरुष धैर्य धारण कर आगे बढ़ता है। भारत में युग बदलने से परिवर्तन की हवा हमेशा से चलती आई है। यहाँ परम्पराओं, रूढ़ियों, प्रथाओं के साथ परिवर्तन के भी खिलाफ आन्दोलन कितना सशक्त रहा या फिर आन्दोलन के सूत्रधारों ने अपने बाद की पीढ़ी को सामाजिक न्याय के आन्दोलन की

वह विरासत किस रूप में सौंपी। यहाँ सवाल यह भी उठता है कि नई पीढ़ी ने कितनी प्रतिबद्धता से सकारात्मक सोच की मानसिकता वाले समाजशास्त्रियों तथा बुद्धिजीवियों से अपने रिश्ते बनाए। तभी गौतम बुद्ध, मनु, रैदास, फूले, अम्बेडकर, सावित्री सभी का नाम लिया जाता है, पर आज के पीछे छिपी महिला की क्या स्थिति है। उसका जिक्र बहुत कम ही होता है। मनुस्मृति का यह चिर-परिचित श्लोक-

'यत्र नार्यन्तु पूज्यन्ते रमंते तत्र देवता:'

इस बात का संकेत देता है कि प्राचीन काल भारतीय महिलाओं का स्वर्णिम काल था। पुरुष प्रधान व्यवस्था के बावजूद महिलाओं का समाज में सम्मान था, प्रतिष्ठा थी और उन्हें आगे बढ़ने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। अपने आध्यत्मिक ज्ञान और अगाध प्रतिभा से वे समाज को यह बताने में सक्षम हुई कि वे पुरुषों से किसी भी स्तर पर कम नहीं है।

समाज में नारियों को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। नारी को घर की लक्ष्मी माना गया है। नारी पति की अर्धांगिनी, सहचरी उसके कन्धे से कन्धा मिलाने वाली सुख-दु:ख की साथी होती है। वह अपना ध्यान नहीं रखती, लेकिन पति के लिए हमेशा समर्पित रहती है। कामायनी में छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने कहा है-

''नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्त्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।"[3]

मानव जीवन में प्रेम का उच्च स्थान होता है। अगर जीवन में प्रेम नहीं है तो वह जीवन शुष्क मरुस्थल के समान है, परन्तु वही प्रेम श्रेष्ठ माना जाता है, जो व्यक्ति के अन्दर छिपे हुए देवत्व का विकास कर उसे मानवता के उच्चासन पर बैठा दे। जो प्रेम हमें विपरीत दिशा में ले जाए, उसका कोई महत्व नहीं होता है। उन्होंने उसी प्रेम को आदर्श दिया, जो जीवन का सर्वागीण विकास करें।

स्त्री विमर्श केवल स्त्री की मुक्ति या पुरुष की बराबरी का आख्यान नहीं हैं, बल्कि अत्यंत गहन अर्थ वाला शब्द नारी की मुक्ति के साथ-साथ नारी की अस्मिता, अस्तित्व, चेतना व स्वाभिमान को भी अपने में समेट लेता है। स्त्री को अपने शरीर,

अपने अस्तित्व या जीवन के स्वस्थ पक्ष को ग्रहण करके आत्म निर्भर की ताकत प्रदान करना स्त्री विमर्श का मुख्य लक्ष्य है। स्त्री विमर्श स्त्री को समाज द्वारा गढ़े गए रूढ़िगत नैतिक मूल्यों को नकारने का साहस प्रदान कर रही है। घर, समाज जैसे नाम के भय से बाहर निकलती आज की स्त्री समाज में अपनी अलग पहचान बना रही है। स्त्री के वैचारिक दृष्टिकोण के अनुसार स्त्री के अनुभव स्त्री के ही हो सकते हैं क्योंकि ये सब उसके देह, मन तथा उसकी विशिष्ट सामाजिक स्थिति से जुड़े हुए है, इसलिए स्त्री ही अपने अनुभव और अनुभूतियों को प्रामाणित ढंग से लिख सकती है, पुरुष उसकी कल्पना कर सकता है, अनुमान लगा सकता है, लेकिन प्रामाणित तौर पर उसका लेखन स्त्री के बारे में हो सकता है, स्त्री लेखन नहीं। परन्तु स्त्रीवाद के माध्यम से ही स्त्री मुक्ति की बात छेड़ी जाती है। यह मुक्ति स्त्रीवादी लेखन के माध्यम से स्त्री पुरुष दोनों ही कर सकते है। तसलीमा नसरीन का मानना है कि- ‘‘औरत जिन्दगी भर एक हाथ से दूसरे हाथ समर्पित होती रहती है। बस, उसके मालिक बदलते रहते हैं। पिता से प्रेमी को, प्रेमी से पति को, पति से पुत्र को। औरत की जिन्दगी औरत की तो होती नहीं। औरत विभिन्न रिश्तों से पुरुष से बंधी हुई है, जंजीरों में जकड़ी हुई।"[4]

आज जिस तरह नारी विमर्श हिन्दी साहित्य में आ रहा है वह सिर्फ औपचारिक और प्रचारात्मक सा क्यों लगता है समझ नहीं पाती हूँ कि आज के स्त्री-विमर्श का मुख्य स्वर शक्ति केन्द्रित और यौनिक सम्बन्धों को लेकर ही क्यों मुखर हैं? क्या स्त्री की निजता और उसकी अस्मिता को इस तरह प्रचार की वस्तु बनाया जाना उचित है? क्या नारी विमर्श से जुड़े अन्य बिन्दूओं की तरफ अपनी दृष्टि ले जाने में आज के लेखक में समझ नहीं है? क्या नारी विमर्श हेतु यही एक पहलू शेष रहा गया है जिस पर गंभीरता से लिखा जा सकता है? सभ्यता के विकास के साथ स्त्रियों के विचार एवं दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन लक्षित होने लगे है। स्त्रियों को यह बोध हो गया है कि त्याग, बलिदान, सहनशीलता आदि परम्परागत स्त्री सुलभ गुणों से नारी का उत्थान संभव नहीं है। स्त्री की पराधीनता तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के उदय का कारण था- स्त्री की यौनिकता एवं प्रजनन क्षमता पर पुरुष का

पूर्ण नियंत्रण। एजिलाबेथ फिशर की मान्यता है कि- ‘‘गर्भावस्था एवं प्रजनन के दौरान स्त्रियों की शारीरिक अक्षमता, पशुओं को सिधाने की कला तथा अपनी मूलभूत हिंसक प्रवृत्ति के कारण पुरुष ने बलात्कार के जरिए स्त्री की यौनिकता, मानसिकता एवं शरीर पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। स्त्री आखेट की जा सकने वाली वस्तु बन गयी और इस प्रकार समाज व्यवस्था की संरचना और संचालन में पुरुष की केन्द्रीय भूमिका सशक्त होती गयी।"[5]

ऐसे ही तमाम प्रश्नों से मेरा संवेदनशील मन व्यथित हो उठता है। मेरी दृष्टि में आज स्त्री विमर्श को संकुचित कर दिया गया है। जहाँ एक तरफ प्रेम, आस्था, विश्वास जैसे शाश्वत सम्बन्धों को नकारकर यौन स्वच्छंदता और विवाहेतर सम्बन्धों को जायज ठहराने की कवायद को स्त्री विमर्श का नाम दिया जा रहा है वहीं दूसरी तरफ निर्माता और आधुनिकता दोनों में ही स्त्री के अंतरंग संसार को दरकिनार करते हुए उसके शरीर के भूगोल की रतिवादी थाली को स्त्री विमर्श का नाम दिया जा रहा है। तब संस्कृति के ऐसे संक्रमण काल में ये बेहद जरूरी है कि इस नई पीढ़ी को सही अर्थों में स्त्री विमर्श का अर्थ बताया जाये। भारतीय नारी का कल जो स्वरूप था वह आदेशों और विश्वासों से लदा हुआ था। इस कारण समसामयिक परिस्थितियों से उनका सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता। पौराणिक मान्यताएं स्त्री को स्वतंत्र सत्ता प्रदान नहीं करती। अपितु उसे जन्म-जन्मान्तर तक पति की दासी बनने के लिए बाध्य कर देती थी। इस कारण विडम्बनाग्रस्त एवं कुण्ठा और घुटन की परिस्थितियों में जीवन बिताने को वह बाध्य हो गयी थी। परम्परा स्त्री पर लादा हुआ आदर्श और सतीत्व की पाबन्दियां कहां तक समसामयिक स्थितियों में तर्क संगत लगती है और उनकी प्रासंगिकता कहां तक माननीय है यह बात विचारणीय बन जाती हैं। ‘‘पुरुषतान्त्रिक समाज में औरत ही शिकार है। जैसे यह सच है, वैसे ही नारी की आत्मघाती होती है, यह भी सच है आज अगर औरतें अपने अधिकारों के मामले में सचेत होती, आत्मपरिचय के संकटमोचन में, अगर वे लोग अलग-अलग न होकर संगठित होती, औरत-औरत में अगर और ज्यादा सम्पर्क होता, परस्पर के प्रति अगर सहानुभूति और श्रद्धा जरा और बढ़ जाती, अगर वे लोग अन्तरंग होकर एक दूसरे के प्रति सहयोग में

हाथ मिलाती, क्षमता बढ़ाने में औरत अगर औरत का साथ देती तो पुरुषतंत्र में और गहरी दरारें पड़ जाती और वह भयंकर रूप से चूर-चूर हो जाता। यह दुनिया रहने लायक बन जाती।"[6] प्रेमचन्द भी नारियों के आदर्श प्रेम में विश्वास रखते थे। विवाह के पूर्व शारीरिक सम्बन्ध स्थापित होना अथवा अन्य घृणित कार्यों को परम्परा के विरुद्ध मानते थे। उन्होंने जितने भी नारी पात्र प्रेमिका के रूप में चित्रित किए है, उन सभी में आदर्श प्रेम ही दिखाई पड़ता है। वे कभी अपने कर्तव्य पथ से च्युत नहीं होती और अपनी आत्मा का हनन कर आत्मा-प्रवंचना का शिकार नहीं होती। चाहे वह 'रंगभूमि' की 'सूफिया' हो या 'गोदान' की 'मालती' या 'वरदान' की 'विरजन'। सभी में प्रेम का उच्च रूप मिलता है।

स्त्री विमर्श का अर्थ एवं परिभाषा-

आधुनिक समाज के लिए स्त्री विमर्श कोई अमूर्त या काल्पनिक अवधारणा नहीं है, बल्कि एक यथार्थवादी और ठोस अवधारणा है जबकि इसके समर्थक अभी बहुत कम है। इनमें से बहुत ऐसे है जो सतही मन से इसका समर्थन करते है और निजी जिन्दगी में अपनी पत्नी के साथ क्रूरता से व्यवहार करते है जबकि मंच से इसका जोरदार विरोध करते है। इस अवधारणा का सीधा संबंध सामाजिक होने के कारण लगातार पिसने वाली स्त्री के जीवन के उन पडावों से है जिसमें वह पुरुष की सामन्ती मानसिकता का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। नारी को संसार का सबसे बहुमूल्य रत्न कहा गया है संस्कृत के आचार्य सारंगधर ने भी कहा है कि- ''नारी में माँ की आत्मा छिपी है, जो अपनी ममता लुटाने के लिए सदा सर्वदा अधीर रहती है, उसमें पत्नित्व की गरिमा का निवास है जो नाव के पाल की तरह अहर्निष गृहस्थी को खेने वाले पति को सर्वात्मना सहयोग देने के लिए तत्पर रहती है। उसमें बहन का स्नेह हिलौरे मारता है, जो कैसे भी आड़े समय में भाई को अपने निश्छल प्रेम से कोटिश विकट संघर्षों में अदम्य साहस और शौर्य के कार्य करने के लिए प्रेरित करता है और सबसे बढ़कर उसमें क्षमा, दया, त्याग और शांति का वह अजस्र स्त्रोत निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। जिससे वह अपने स्वजनों और परिजनों को कृतार्थ कर देना

चाहती है। उसमें बन्धुत्व और स्नेह की पावन मंदाकिनी बहा देना चाहती है। तभी तो उसे वेद की वाणी में परिवार रूपी वृत्त का व्यास अथवा ध्रुव बिन्दु कहा गया है।[7]

साहित्य के क्षेत्र में नारी पुरुषों से पीछे नहीं है। नारी की करुणा अन्तर्मन का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे है। क्रूरता अनुकरणीय नहीं है। उसे नारी जाति जिस दिन स्वीकार कर लेगी, उस दिन समस्त सदाचारों में विप्लव उठेगा। नारियों द्वारा लिखा साहित्य जन-जीवन के नवीन पक्षों और रंगों को उद्घाटित करता है। नारी सहज रहस्यमयी मनोभावना की अभिव्यंजना में तो वह पुरुष के साहित्य की अपेक्षा कुछ अधिक सहज, स्पष्ट और मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। आज स्वतंत्र भारत की आधुनिक संस्कृति में नारी के आदर्श का प्रतिमान कुछ परिवर्तित हो गया है। प्राचीन काल में पुरुष की पूर्णता समझी जाने वाली नारी आधुनिक युग में व्यक्ति स्वातंत्र्य के लाभ से लाभान्वित होकर पुरुष की दासता से बिल्कुल मुक्त स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाली हो गयी है।

वर्तमान में हमारे समाज का जो रूप दिखाई देता है वह अर्थ और नीति दोनों की दृष्टि से खोखला है। आज की नारी को विचारपूर्वक सतर्क होकर कदम उठाना है, उसे अपने ऐसे नवीन रूप का निर्माण करना है जो युग की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए देश के महान सांस्कृतिक गौरव को भी अक्षुण्य रख सके। एक स्त्री के सहयोग और साथ के बिना पुरूष कभी पूर्णत्व को प्राप्त नहीं कर पाता। शास्त्रों में भी स्त्री को पुरूष का अर्द्ध भाग बताया गया है।- अधोद्रवा एव आत्मन: यत पति के आधार पर ही पत्नी को अर्धांगिनी कहा गया है इसलिए जब तक पुरूष स्त्री को नहीं पाता तब तक उसके व्यक्तित्व में पूर्णता नहीं आती है।[8]

नारी की सहभागिता के बिना हम किसी उच्च शिखर तक नहीं पहुँच सकते। समाज के विकास के लिये उत्तरदायी है बल्कि वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक, सुरक्षात्मक और भौगोलिक दृष्टिकोण से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जहाँ महिलायें उत्कृष्ट भूमिका निभा रहीं है। एक ओर जहाँ उच्च वर्गों की शिक्षित महिलायें स्कूलों, कॉलेजों तथा दफ्तरों, कारखानों

आदि में पुरुषों के साथ कन्धें से कन्धा मिलाकर देश के विकास में संलग्न है। साहनी जी ने नारी के आदर्श स्वरूप का चित्रण किया। किसी ने कहा है-

"नारियाँ दिव्य चिंतन जगाएँ अगर

हर मनुष्य देव बनता जाएगा

नारियाँ देश की जाग जाए अगर

देश खुद ही बदलता जाएगा।"

स्वयं को गुलामी से मुक्ति की आवाज उठाने वाला पुरुष वर्ग भी नारी के लिए वही व्यवस्था, कायदे-कानून रखना चाहता है जो स्वंय उसे स्वीकार्य नहीं है। स्त्री उसी समाज का अविभाज्य अंग है, जिसे पुरुषों ने अपने स्वार्थ से निर्मित किया है। इसलिए नारी की मुक्ति इस सामाजिक ढाँचे में बदलाव के बिना असंभव है। क्योंकि स्त्री विमर्श समाज का अनिवार्य अंग है। समाज में जाग्रति के लिए सबसे पहले स्त्रियों को जाग्रत करना जरूरी है। पुरुष अत्याचारों के विरुद्ध स्त्रियाँ व्यक्तिगत रूप से आवाज उठाती थी किन्तु उनकी संख्या कम होने के कारण उनकी आवाज बहुत दूर तक नहीं जा पाती थी। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में यूरोप में एवं बीसवीं सदी के भारत में व्यापक रूप से स्त्री की समस्याओं को लेकर पुरुष अत्याचार के विरूद्ध स्त्री विमर्श के लिए आन्दोलन प्रारंभ हुए। इसके फलस्वरूप नारी मुक्ति और पुरुषों से बराबरी का अनेक दृष्टियों से समर्थन किया गया। समाज के सारे नियम पुरुषों द्वारा अपने हित साधन में गढ़े गये, इनमें समाज की आधी आबादी स्त्री की कोई भूमिका नहीं रही।

कहते है कि किसी देश की प्रगति का आंकलन करना हो तो स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का पता लगाये। इसका सामान्य सा अर्थ है स्त्री-अस्मिता और देश की अस्मिता का जुड़ाव बिन्दु एक है। प्रश्न उठता है कि स्त्री पुरुष परस्पर पूरक होकर भी दो स्वतंत्र इकाईयां है। दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व है। तब दोनों की स्वतंत्र अस्मिता क्यों नहीं। संसार नर-नारीमय है चराचर सम्पूर्ण जगत इसी द्वैत की परस्परता पर टिका है। प्रेम आकार लेकर धरती पर अवतीर्ण होता है, नारी के

माध्यम से। जननी के रूप में नारी सृष्टि की केन्द्र व धारिणी है, भारिणी है। भारत अपनी स्वतंत्रता के सात दशक बिता चुका है और इन वर्षों में भारत में बहुत कुछ बदला। विश्व के सबसे मजबूत गणतंत्र ने भी अपनी इच्छा से जीने की, सोचने की विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता दी और सभी ने इसका मनचाहे रूप में उपभोग किया। परन्तु एक वर्ग ऐसा भी है जो आज भी इस सुखानुभूति से वंचित है, और वह है स्त्री। प्राचीन समय की यह मान्यता व सामाजिक विश्वास है कि स्त्री को जीवन के हर पड़ाव पर पुरुष के संरक्षण की आवश्यकता होती है, परिवर्तित नहीं हुई।

पुरुष अपनी पत्नी के मरणोपरांत पुनर्विवाह कर लेता था किन्तु स्त्री को ऐसा करने की अनुमति नहीं थी। सोमोन द बोउदार का कथन सटीक बैठता है कि औरत जन्म से ही औरत नहीं होती, बल्कि बढ़कर औरत होती है। कोई भी जैविक मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबों-गरीब जीव की निर्माण करती है।[9] कानून स्त्री स्वतंत्रता को वैधता जरूर प्रदान करता है। फिर भी इसमें छिपी कमियों की वजह से पूरी तरह कारगर साबित नहीं हो पा रहा है। आज स्त्री के साथ घटित होने वाले बलात्कारों की संख्या इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय कानून व्यवस्था भी स्त्री के लिए एकदम नकारा साबित हो चुकी है। किन्तु यह सब जानते हुए भी ये पुरूष प्रदान समाज आज भी स्त्रियों को वह सम्मान, वह स्थान नहीं देता, जिसकी वह सच्ची हकधारिणी है। इस पुरूष समाज में सदैव स्त्रियों की अस्मिता को कुचला जाता रहा है और उसे मात्र भोग की वस्तु समझा जाता है। किन्तु इस प्रकार का व्यवहार करते हुए पुरूष भूल क्यों जाता है कि उसे स्वयं भी एक नारी ने ही जन्म दिया है। स्त्री और पुरूष आपस में बहुत गहरे सम्बन्धों में बंधे है कि उन्हें एक दूसरे का सहयोगी और पूरक बनकर एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा करना ही होगा।

भगवान मनु के अनुसार-

संतुष्टों भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।

यस्मिननेव कुले नित्यं कलयाणं तत्र वै ध्रुवम्।[10]

जिस कुल में स्त्री से पुरूष प्रसन्न रहता है और पुरूष से स्त्री उसका अवश्य ही कल्याण होता है। हम यहाँ कुछ ऐसे बिन्दु प्रस्तुत कर रहे है जिनके माध्यम से स्त्री विमर्श को और अधिक जानने व समझने में सहायता मिलेगा।

स्त्रियों की भयंकर गुलामी-

भारतीय साहित्य में स्त्री के विषय में प्रबल, विरक्त एवं उत्कृष्ट अनुरक्ति जैसी दो विरोधी विचारधारा हर काल में रही है। एक तरफ वह शान्ति स्वरूपा मानी गई, दूसरी तरफ अबला। संतों ने तो उसे 'माया' कहकर त्यागने की ही सलाह दे डाली। संतों के स्त्री निन्दा अभियान के पीछे उनकी अपनी व्यक्तिगत कुण्ठा थी। निम्न कुल में जन्म लेने और विपन्न होने के कारण जब उन्हें उचित शिक्षा व गृहस्थ जीवन का सुख न मिला, तो वे प्रतिक्रिया स्वरूप योग साधना व ब्रह्मचर्य के बहाने स्वर्ण व स्त्री की निन्दा करने लगे। सभी सन्त स्त्री विरोधी नहीं थे। 250 संत संप्रदायों में से केवल एक दर्जन संत स्त्री विरोधी थे। शेष या तो तटस्थ है या स्त्री के पक्षधर। सिक्ख सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरु नानक देव ने तो गुरु ग्रंथ साहब में तीन तीन स्त्री संतों को स्थान दिया है। जिस प्रकार लम्बे समय तक कोई पक्षी जब पिंजरे में अपना जीवन व्यतीत करता है तो वह न सिर्फ शारीरिक रूप से बल्कि मानसिक रूप से भी एक ऐसा गुलाम बन जाता है जो उड़ने की सामर्थ्य व स्वतन्त्रता रखते हुए भी उड़ता नहीं है और पिंजड़े में बंद रहने की ही अपनी नियति स्वीकार कर लेता है। उसी प्रकार यही दशा अज्ञान व रूढ़ियों में जकड़ी भारतीय नारी की है। इसके दिल में समाज, रूढ़ियों और लोकापवाद का भय इस कदर बैठ गया है कि नारी सारी शक्तियाँ, योग्यताओं के होते हुए भी दासता की बेड़ियों से मुक्त नहीं हो पा रही है और कालान्तर से आज तक कष्टप्रद जीवन व्यतीत कर रही है।

अहो! मैं मुक्त नारी! मेरी मुक्ति कितनी धन्य है।

पहले मैं मूसल लेकर धान कूटा करती थी,

आज उससे मुक्त हुई।

अब उस जीवन की आसक्तियों और मलों को मैंने छोड़ दिया।

मैं आज वृक्ष मूलों में ध्यान करती हुई, जीवन यापन करती हूँ।

अहो! अब मैं कितनी सुखी हूँ।[11]

कष्टमय घरेलू जीवन में जूझने वाली स्त्री कैसे अपने पति की अवहेलना सहकर जी रही थी और बाद में कैसे मुक्त होकर सुखी होने का आनंद पा रही थी इसकी झलक इन पंक्तियों में है। आज वह समय आ चुका है कि भारतीय नारियों को अपने हक के लिए लड़ना और पुरूष को भी अपनी महत्ता समझनी होगी तथा स्वयं भी गुलामी की मानसिकता से बाहर आना होगा।

तोड़कर मानसिक गुलामी की जंजीर,

मुक्त कर स्वयं को नारी,

जब पहचानेगी स्वयं को तू,

तब बनेगी तू अधिकारी,

साबित करना होगा तुझे,

पुरूष समाज में अपना किरदार,

तब चहुँ ओर होगी निश्चित

एक दिन तेरी जय जयकार।- स्वरचित डां. सुशीला रानी।

नारी किसी भी सभ्यता और संस्कृति की निर्विवाद जननी रही है। काव्य अथवा साहित्य की प्रचलित परिभाषाओं की सीमा से परे वर्तमान सभ्यता और संस्कृति की आधार भूमि भी है। आदर्शों तथा यथार्थ के प्रतिरूपों में नारी ने प्रत्येक युग में अपनी अक्षय ऊर्जा से हर किसी में चिरंतन जिजीविषा का संचार किया है लेकिन पुरुषवादी समाज में कभी भी उसे दासी या भोग्या से अधिक कुछ नहीं माना। लेकिन प्रगतिवादी लेखकों ने नारी के नवोन्मेष शालिनी विचारों को नारी के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में संदर्भित किया है। आज नारी समाज ने मुक्ति की जिस अवधारणा को

स्वीकार किया है। वह उसे जनतांत्रिक और लोकतांत्रिक समाज तक ले जाता है। समानता, सहभागिता और स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते हुए समाज में अपना रास्ता बनाते हुए आज वह दृश्यमान है।

स्त्री की जगह घर के अंदर है और पुरुष की बाहर यह धारणा अब भी काम कर रही है। लोग मानते है कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों में कम क्षमता होती है। वे घर के बाहर के कार्य नहीं कर सकती। जबकि वे घर के अंदर के तमाम अनुत्पादक कार्य बड़ी मेहनत से करती रहती हैं। अब धीरे-धीरे लोगों की इस धारणा में बदलाव आ रहा है जो नारी मुक्ति की दिशा में अच्छा संकेत है। आधुनिक एवं प्रगतिशील स्त्रियाँ लगभग सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का जोरदार परिचय दे रहीं है और पुरुषों के बराबर ही नहीं बल्कि उनसे आगे जा रही है। धार्मिक अनुष्ठान स्त्री विमर्श के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा है। विडम्बना यह है कि ये अनुष्ठान महिलाओं के लिए ही बनाये गये हैं। हिन्दू धर्म में 'करवा चौथ', 'तीज' आदि के व्रत केवल स्त्रियाँ ही रखती हैं। पुरुष के लिए ऐसा कोई विधान नहीं है। ये बंधन है जिसने स्त्री को गुलाम बनाया है और पुरुष वर्चस्व कायम किया जाता है। 'रक्षाबंधन' जैसे त्यौहार में बहन ही भाई को राखी बाँधती है और भाई के दीर्घायु होने की कामना करती है। भाई ऐसा व्रत क्यों नहीं करता। लोग दलीले देते है कि हमारा समाज आधुनिक हो रहा है। इक्कीसवीं सदी महिलाओं की सदी होगी। किन्तु आँकड़े बताते है समाज की आधी आबादी महिला की स्थिति एकदम असंतोष जनक है। शिक्षा का क्षेत्र हो या सेवाओं का, घर परिवार का क्षेत्र हो या राजनीति का हर कहीं उसकी स्थिति दोयम दर्जे की बनी हुई है।

सभ्य जीवन का मूल आधार संवाद। जनतंत्र का यही एकमात्र तरीका है। सुशिक्षित समाज, बहुलतावादी समाज, आजाद समाज के अस्तित्व का यही एकमात्र रास्ता है और ऐसे समाज में सरकार की भूमिका यही बनती है कि वह संवाद और बराबरी के मंच का रखवाला बने। हिंसा, मारपीट, जोर-जबरदस्ती, गुंडागर्दी इन तौर-तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है तानाशाही के मुल्कों में, साम्राज्यवादी या सामंतवादी व्यवस्थाओं में। जब संवाद की स्थिति किसी वर्ग विशेष की जिद, जोर-

जबरदस्ती, भावनात्मक उन्माद, स्वार्थ या किसी ओर वजह से असंभव हो जाए तो यह सरकार का दायित्व है कि उस आपात घड़ी पर काबू पाने के लिए समझौता भले ही करना मुनासिब समझे, पर जल्द से जल्द वरन साथ-साथ ही संवाद के रास्ते फिर खोले। आज हम जहाँ पहुँच गए है वहाँ खतरा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बेवजह इस्तेमाल का उतना नहीं है जितना कि उस स्वतंत्रता के तरह-तरह से कुचले जाने का है। आस्था और धार्मिक संवेदना के नाम पर जब न तब हंगामे होने लगे है और जीत बराबर हंगामा करने वालों, हिंसा की धमकी देने वालों की ही होती है। यह खतरनाक है। हर समाज के लिए अभिव्यक्ति की आजादी जरूरी होती है इस आजादी के बगैर कोई सोच, चिंतन, कोई खोज, कोई सामाजिक-सांस्कृतिक - ऐतिहासिक लेखा-जोखा मुमकिन नहीं हो सकता। परंपरा तक जिनके नाम पर अक्सर बवाल होते रहते है बगैर सतत आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन के नहीं पनप सकती। संवाद के जरिये अपनी जिज्ञासा, संदेह, मतभेद वगैरह दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। लेखक, कलाकार, पत्रकार, अध्यापक, शोधकर्ता, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रशासक आदि- सबका काम करने का अपना तरीका होता हैं। उनके काम के अनुरूप नियम होते हैं और सीमाएं बनती - बिगड़ती रहती है।

स्त्री विमर्श का इतिहास-

नारी सृष्टिकर्ता के शाश्वत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है वह सृष्टि के अनादि काल से ही समस्त सृष्टि की संचालिका शक्ति के साथ-साथ मानव हृदय की रागात्मक वृत्तियों का प्रेरणा स्रोत रही है। साहित्य, संगीत, कला संस्कृति और जीवन दायिनी से भी वृत्तियाँ उससे प्रेरणा सभी प्राप्त कर पल्लवित होती रही है। अस्तु, नारी की भावना की अभिव्यंजना भारतीय साहित्य में प्राचीनतम काल से ही अभिव्यक्त होती रही है। वैदिक काल नारी का उत्कर्ष का काल रहा, किन्तु शनैः शनैः समय चक्र की परिवर्तनशील परिस्थितियों के कारण मध्यकाल नारी के पराभव और शोषण का युग सिद्ध हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी की चिन्तनशील चेतना के द्वारा उसके उत्थान के लिए विविध सामाजिक और शैक्षिक प्रयास किये गये। दयानन्द, तिलक, गांधी आदि मनीषियों के सत्प्रयासों से स्त्री विमर्श को नवीन चेतना प्राप्त हुई,

जिसका प्रभाव आधुनिक काव्य चिन्तन पर प्रतिबिम्बित हुआ। आधुनिक कवि इस संघर्ष प्रधान युग में नारी को केवल सहचरी बनाकर ही सन्तुष्ट नहीं है, अपितु वह उसे जीवन की सहधर्मिणी बनाकर साथ-साथ जीवन यात्रा पूरी करना चाहता है। सामाजिक संचेतना के प्रत्येक आयाम में नारी के प्रगतिशील कदम सामयिक विकास को नई दिशा दे रहे है।

सदियों से संघर्षरत नारी समाज की एक इकाई के रूप में अपनी पहचान की निर्मिती के लिए स्त्री जिस अदम्य जिजीविषा एवं प्रबल इच्छा शक्ति का परिचय आज दे रही है, वह उसकी बौद्धिक जागृति की ही परिचायक है, जो उसने धर्म, आस्था, परंपरा, मूल्य एवं व्यवस्था के प्रति प्रकट किया है। वर्तमान समय में नारी पुरुष वर्ग से प्रतिस्पर्धा न करके केवल उसके समकक्ष एक मनुष्य होने के नाते प्राप्त होने वाले अधिकारों की मांग कर रही है। वह पुरुष के अस्तित्व को न नकार कर एक सहनागरिक की तरह अपनी पहचान स्थापित करना चाह रही है। इसके लिए उसका सारा जोर अब तक प्रयुक्त मिथकों का अस्वीकार और स्वतन्त्र इन्सान के रूप में अपनी स्वीकृति का है। महादेवी वर्मा के शब्दों में, "संसार के मानव समुदाय में वही व्यक्ति स्थान और सम्मान पा सकता है वही जीवित कहा जा सकता है, जिसके हृदय में और मस्तिष्क ने समुचित विकास पाया हो और जो अपने व्यक्तित्व द्वारा मनुष्य समाज से रागात्मक के अतिरिक्त बौद्धिक सम्बन्ध भी स्थापित कर सकने में समर्थ हो। एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास की सबको आवश्यकता है। कारण बिना इसके न मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति और संकल्प को अपना कह सकता है और न अपने किसी कार्य को न्याय-अन्याय की तुलना पर तोल सकता है।"[12]

वैदिक युग-

हिंदी साहित्य में स्त्री चाहे विषय के रूप में आई हो चाहे विषयी के रूप में, उसका एक लम्बा इतिहास रहा है। गुजरी हुई शताब्दी पर पश्च दृष्टि डाले तो-जहाँ तक प्रागैतिहासिक भारतीय समाज में नारी की स्थिति का सवाल है, वैदिक साहित्य में व्यक्त हुई ऐसी कई बातों से इसका अनुमान लगाया जा सकता है जो एक ओर मातृसत्तात्मक समाज में नारियों की विकसित और गौरवमयी स्थिति का परिचय

कराती है, वही दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक सम्बन्धों में नारियों की भूमिका के क्रमश: गौण होते सम्बन्धों को भी दर्शाती है। मनुस्मृति इसका साक्षात् प्रमाण है वैदिक वाड्.मय में सर्वाधिक प्राचीन और सर्वाधिक महत्वपूर्ण ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 2006 मन्त्रों में से मात्र तीन मन्त्रों (दो लोपामुद्रा द्वारा और एकमात्र ऋचा रोमशा द्वारा) का नारियों द्वारा रचित होना और उसमें से भी काम को ही वर्ण्य-विषय बनाना उस काल में नारियों की दयनीय दशा का स्वत: परिचय देता है। विद्वज्जन किस आधार पर वैदिक काल में नारियों के स्थान को ऊँचा घोषित करते है, क्योंकि ऋग्वेद के अन्य मण्डलों में भी जहाँ नारियों द्वारा ऋचाएँ कही गयी है उनके विषय रति, पति प्रेम, सपत्नी-सम्बन्ध आदि ही रहे हैं।

स्त्रियों के विषय में ऋग्वेद में जो विवरण प्रस्तुत है, उनके अनुसार "स्त्री का मन चंचल होता है। उसे नियन्त्रण में रखना असम्भव सा है।"[13] "उसकी बुद्धि भी छोटी होती है।"[14] पत्नी एक खेत के समान होती है, जिसमें पुरुष अपना बीज बोता है।"[15] यही नहीं पारिवारिक सम्बन्धों में भी स्त्री मात्र भोग्या थी। ऋग्वेद के दसवें मंडल के दसवें सूत्र में "सहोदर भाई-बहन, यम और यमी का सम्वाद है जिसमें यमी-यम से सम्भोग याचना करती है, वही अथर्ववेद में प्रजापति का अपनी पुत्री के साथ सम्भोग का वर्णन है।"[16]

पी.वी. काणे ने लिखा है "ऋग्वेद, (1.109.2) मैत्रायणी संहिता (1.10.1), निरुक्त (6.9,3.4), ऋग्वेद (3.31.2), ऐतरेय ब्राह्मण (33) आदि के अवलोकन से विदित होता है कि प्राचीनकाल में विवाह के लिए लड़कियों का क्रय-विक्रय होता था।

रामायण काल-

रामायण काल की बात करें तो सीता राम की छाया की तरह अनुसरण करने वाली थी - पूर्ण समर्पिता और दूसरी तरफ राम जैसा एकनिष्ठ पतिपरायणा और गर्भिणी सीता के बगैर किसी अपराध के एक सामान्य नागरिक (धोबी) का ताना सुनकर जंगल में धोखे से निर्वासित कर देते है। अन्याय, अत्याचार और शोषण का इससे बड़ा उदाहरण क्या होगा कि सीता को यह बताना भी जरूरी नहीं समझा की आखिर उसका अपराध क्या है? लंका विजय के बाद भी राम ने सीता को अग्नि

परीक्षा के बाद ही स्वीकार किया था। वास्तव में सीता के प्रति राम की यह कठोरता यौन नैतिकता के सन्दर्भ में आये कठोर सामाजिक नियमों का प्रतिफलन है। उत्तर वैदिक काल तक नारी की स्थिति में गिरावट आती गई। नारी का स्थान गौण समझा गया, लेकिन इसी काल में स्त्री चेतना का आरम्भ भी हुआ। डॉ. सौ. मंगला कप्पी केरे के अनुसार- "गार्गी ने याज्ञवल्यक से ब्रहमसत्ता के बारे में प्रश्न किया तो उसे अपमानित किया तो गार्गी का असन्तोष ही मुक्ति का प्रारंभ हुआ।"[17] बलदेव बंशी के अनुसार- " वैदिककालीन एवं उत्तर वैदिककालीन नारियों ने ज्ञान प्रकाश में अपनी बहुमुखी प्रतिमा का परिचय दिया तथा ऋषियों के दार्शनिक चिन्तन के विकास में सहयोग दिया।"[18]

रामायण काल में नारियाँ मजबूत रूप से स्वतंत्र थी जबकि अयोध्या के समाज की नारियाँ, पुरुषों के प्रति कारुणिक आज्ञाकारिता की डोर से पूर्णरूप से आबद्ध है। दूसरी तरफ वानरों के बीच समूह-विवाह के उदाहरण देखने को मिलते है। ‘‘बाली और सुग्रीव जिनका विवाह क्रमश: तारा और रूमा से हुआ है, विभिन्न अवसरों पर वे दोनों नारियों में साझेदार दिखते है। यहाँ पतिव्रत्य की वर्जना नहीं है।"[19]

महाभारत, स्मृति एवं पुराण काल-

इस काल में नारी पति का प्रेम साधने के लिए मंत्र तंत्र का प्रयोग करती थी। टोना-टोटका, जादू-मंतर इसी युग की देन है। इस काल में अनेक आड़म्बर अपनाये जाने लगे थे। इसी का एक अंग नियोग प्रथा थी। विचित्रवीर्य की विधवाओं अम्बिका और अम्बालिका ने व्यास द्वारा नियोग करने पर धृतराष्ट्र और पाण्डु को जन्म दिया था। कुन्ती ने कौमार्यावस्था में ही कर्ण को जन्म दे दिया था। महाभारत काल में नारियों का प्रतिनिधित्व करती द्रौपदी, जो शुरू से ही अर्जुन के प्रति अनुरक्त थी और जिसे वरण करने के लिए लक्ष्यभेद वृत्ति का प्रयोग किया गया।

पुराणों में स्त्री धर्म के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। ‘स्कन्द पुराण के अनुसार पत्नी को पति का नाम नहीं लेना चाहिए, उसे दूसरे पुरुष का भी नाम नहीं लेना चाहिए, चाहे पति उसे उच्च स्वर से अपराधी ही क्यों न सिद्ध कर रहा हो, पीटी

जाने पर उसे जोर से रोना भी नहीं चाहिए। उसे हंसमुख रचना चाहिए।"[20] इसी प्रकार पद्म पुराण में पतिव्रता के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि- ''वह स्त्री पतिव्रता है जो कार्य में दासी की भांति, सम्भोग में अप्सरा जैसी, भोजन देने में मां की भांति तथा विपत्ति में मंत्री (अच्छी राय देने वाली) हो।"[21]

बौद्ध कालीन नारी-

बौद्ध समाज का सामान्य भाव औरतों के प्रतिकूल था। इस काल में अनेक अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि की रचनाएं लिखी गई। नाटक के क्षेत्र में तो यह काल अद्‌वितीय है। पर नारी की स्थिति का अनुमान मात्र इस बात ने लगाया जा सकता है कि नाटक आदि किसी भी साहित्यिक कृति में नारी पात्र सदा प्राकृत ही बोलती है। प्राकृत अर्थात् जन भाषा यानि नौकरों-चाकरों की भाषा। चाहे सीता हो या शकुन्तला, राजकुल की हो या ऋषि कन्या उनके लिए भरत ने विधान कर दिया कि वह भृत्यों चेरियों आदि की भाषा बोलेगी। उसका स्तर वहीं तक है। कामिनी, रमणी आदि उसकी संज्ञा हुई। बड़ी संख्या में उसे कोठों पर बैठाया गया। किस प्रकार वेश्यावृत्ति अर्थकारी हो सकती है। वेश्याओं को किस तरह पुरुषों को फंसाना चाहिए आदि विषयों पर ग्रन्थ लिखे गये। दामोदर गुप्त और क्षेमेन्द्र की पुस्तक 'कुट्टनीमतम्' और 'समयमात्रिका' इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है।

जैन कालीन नारी-

जैन कवियों ने अपने ग्रंथों में नारी को काफी सम्मानजनक स्थिति में लाकर खड़ा किया है। स्वयंभू ने अपने महाकाव्य 'पउमचरिउ' में सीता और मन्दोदरी जैसी स्त्रियों का अत्यन्त उदात्त चरित्र अंकित किया है। जैन धर्मग्रंथों में नारी की प्रशंसा की गई है। जैन धर्म में नारी पुरुष संन्यासियों के आश्रम में अकेले नहीं जा सकती। पुरुष के रिक्त आसन पर खुद नहीं बैठ सकती। स्त्री दीक्षा नहीं दे सकती। जैन धर्म में नारी की जो प्रशंसा की गयी है यह इसी तरह के शील, सतीत्व और आचरण की पवित्रता को प्रतिष्ठित और रेखांकित करने के लिए। स्वयंभू के मन्दोदरी के चरित्र की इसलिए प्रशंसा की गयी है कि वह रावण जैसे दुष्ट पति के लिए भी दौत्य कार्य

स्वीकार करती है जो दौत्यकार्य नारी कार्य के लिए भी तत्पर होती है और सीता के व्यंग्य का अपमान गरल हंसते-हंसते पी जाती है।

मुगलकाल में नारी-

मध्यकाल के दौरान जातीय व सामाजिक संतुलन के बिगड़ने से नारी की पराधीनता और बन्धनों में निरन्तर वृद्धि होती गई। सुरक्षा और संरक्षण के नाम पर उसकी स्वतंत्रता पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिये गये। घुटन और सेवा कार्य को उसकी नियति मान लिया गया। अनेक पौराणिक मिथकों ने उसके बढ़ते कदमों को रोका है। वस्तुत: समय के परिवर्तन के साथ उसकी स्थितियों में अन्तर आया है। अत: पुरानी धारणाओं को आज उस पर लादा नहीं जा सकता। नारी की जागृति के साथ ही उसकी भूमिकाओं और दायित्वों को भी वृद्धि हुई है। नये संदर्भों में उसकी एक गरिमामय, आत्मविश्वासपूर्ण छवि की सर्वाधिक आवश्कता है। वह पुरुष की प्रतिद्वन्दी नहीं, उसकी पूरक और सहयोगिनी है। मध्यकालीन विदेशी आक्रमण और विलास का आत्म केन्द्रित रूप भी उसी का अंग है किन्तु वर्तमान संदर्भों में नारी की स्वतंत्रता भी पुरुष विरोधी और अतिवादी छोर पर नहीं, अपितु स्वयं के संतुलित आंकलन पर निर्भर है। कठिनाई तब आती है जब अपनी मूलभूत परम्पराओं से हटकर दो सभ्यताओं का आदान-प्रदान एक नई मगर दुविधाग्रस्त संस्कृति का जन्म बन जाता है। फलत: नारी के अधिकारों और कर्त्तव्यों के बीच सही समायोजन नहीं बैठ सका और भारतीय मर्यादा एवं पश्चिमी उन्मुक्तता का विवेकहीन स्वरूप दिखलाई देने लगा।

समाज में भारतीय नारी की स्थिति-

पुरातन काल से लेकर आज तक भारतीय समाज में नारी की स्थिति बहुत ही दयनीय और सोचनीय रही है। वह जो भी पुरूष के अधीन है। आज भी कन्या को जन्म देने पर उसे अलग-अलग ढंग से प्रताड़ित किया जाता है और संतान न होने की स्थिति में उसे बांझ, बंजरभूमि, कुल्टा, कुलनाशिनी आदि शब्दों के तीर मार-मार कर दिन रात उसके हृदय को छलनी किया जाता है। आज वर्तमान में शिक्षित होने के बावजूद भी नारी को पुरूष समाज की संकुचित मानसिकता से गुजरना पड़ता है।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति आज भी दयनीय ही है उसमें कुछ सुधार तो अवश्य हुआ है परन्तु उतनी मात्रा में नहीं जितनी मात्रा में होना चाहिए था।

आज भी जकड़ी है गुलामी में,

तू भारतीय नारी,

उतनी ही बेबस उतनी ही बेचारी।

बस फर्क इतना ही आया है,

पहले तू शारीरिक गुलाम थी,

और अब मानसिक गुलामी को,

तूने गले लगाया है,

है जिस स्थान की तू सच्ची अधिकारी,

ना तो वो पहले प्राप्त था,

और ना आज तूने पाया।- (स्वरचित डॉ. सुशीला रानी)

हमारे समाज में नारी को कोई भी स्वतंन्त्र अधिकार नहीं है। पैदा होने पर पिता के युवावस्था में पति के और पति के अभाव में पुत्र या भाई के आश्रय में उसे रहने का आदेश धर्म शास्त्रों में भी दिया गया है। स्त्रियों के स्वतंत्र रहने की निंदा सभी के एक स्वर से की है। जबकि इसके विपरीत मनुस्मृतिकार का कहना है-

सूक्ष्मेभ्योअपि प्रसंगेभ्य: स्त्रियों रक्षा विशेषत:।

द्वयोहि कुलहो शोकया वहेयुररक्षित:।। [22]

अर्थात् साधारण से साधारण प्रसंग में भी स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि उनकी उपेक्षा करने से पिता और भर्ता (पति) दोनों के कुलों में संताप उत्पन्न होने की संभावना रहती है। अत: इस पुरूष प्रधान समाज को यह बात समझनी होगी कि स्त्री के बिना उसका अस्तित्व नगण्य है। पुरूष और स्त्री इस समाज रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। यदि एक पहिया बिल्कुल कमजोर हो गया और दूसरा मजबूत है तो कभी

वह गाड़ी ठीक-ठाक चल ही नहीं सकतीं।[23] पुरूष को स्त्री का उतना ही सम्मान करना चाहिए जितना वह अपने आप के लिए चाहता है।

ग्रामीण नारियों पर एक दृष्टि-

ग्रामीण क्षेत्रों में यदि नारी की स्थिति पर हम नजर डालेंगे तो पायेंगे कि यहाँ नारियों की स्थिति और ज्यादा सोचनीय है। उनके पढ़ने के लिए न तो अच्छे विद्यालय है और न ही उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी है कि वे शिक्षा ग्रहण करने गाँव से दूर शहर की तरफ जा सके। गाँवों में आज भी लड़कियों का ज्यादा पढ़ना न तो अच्छा समझा जाता है और नहीं आवश्यक। कच्ची उम्र में ही उनका विवाह तय कर दिया जाता है। बचपन से ही उनमें ऐसी मानसिकता भर दी जाती है कि वे चाह कर भी स्वयं को मुक्त नहीं कर पाती। उस मानसिकता से अपना पूरा जीवन गृह कार्यों पति सेवा और बच्चों की परवरिश में गुजार देती है।

कभी कच्ची उम्र में ब्याहा जाता है,

कभी चिता पर बैठाया जाता है।

मिलेगा अधिकार कब पुरूष समान?

हे नारी! क्यूँ सहती अपना अपमान,

पुरूष बन चुका पशु समान,

कब तक देगी तू बलिदान। (स्वरचित डॉ. सुशीला रानी)

कितनी विडम्बना की बात है कि नारी जिस लगन से प्रेम से एक स्वप्निल संसार की रचना अपने चारों तरफ करती है, उसी संसार में उसके स्वयं के लिए कोई स्थान नहीं होता।

शिक्षित महिलाओं को लेकर अनावश्यक भ्रम:-

समाज के कुछ लोगों के दिमाग में महिलाओं की शिक्षा को लेकर कई अनावश्यक भ्रान्तियाँ बन गई है। अधिकतर समाज के लोगों का मानना है कि नारी का अधिकतर क्षेत्र घर तक ही सीमित रहना चाहिए। उसके द्वारा समाज में घर से

बाहर आकर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने की कोई आवश्यकता नहीं, इसके लिए पुरूष ही काफी हैं। ऐसी मानसिकता वाले लोगों के अनुसार शिक्षित महिलाएँ घर का काम काज नहीं करती वे बच्चों के लालन-पालन की जिम्मेदारी नहीं उठाना चाहती, घर की सुख शान्ति नष्ट करने का कारण बनती है इसलिए ऐसी सोच रखने वाले लोगों को अपनी सोच में शीघ्र ही बदलाव लाने की महत्ती आवश्यकता है क्योंकि अशिक्षित नारी की अपेक्षा एक शिक्षित नारी न केवल वर्तमान को बल्कि अपने भविष्य को भी बहुत कुशलता के साथ संवार सकती है।

एक नहीं है जिम्मेदारी,

कैसे निभा पायेगी नारी?

इसको भी आगे पढ़ने दो।

कुशलता से पूरी होगी हर जिम्मेदारी,

जब होगी शिक्षित हर एक नारी।- (स्वरचित डॉ. सुशीला रानी)

महिलाओं के अधिकार-

स्त्रियों ने समाज के हर क्षेत्र में पुरूष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कुशलतापूर्वक कार्य करके यह सिद्ध कर दिया है कि वह किसी भी स्थिति में पुरूषों से कम नहीं हैं। स्त्रियों ने न केवल विद्यालय, विश्व-विद्यालय, कार्यालयों आदि बल्कि पार्लियामेंट जैसी जगहों पर भी कुशलतापूर्वक अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। इधर कुछ वर्षों में हिन्दू विधान में स्त्रियों को कुछ अधिकार प्राप्त हुए है कोई भी विधवा जिसका पति नये बने हुए विधान के उपरान्त स्वर्गवासी हुआ हो अपने पति के भाग अनुरूप कुटुम्ब सम्पत्ति का भाग प्राप्त कर अपने जीवन पर्यन्त उसका उपयोग कर सकती है।[24]

इतिहास बताता है कि अनेक स्त्रियों ने अनेक अवसरों पर देश की बागडोर अपने हाथों में लेकर उसका संचालन बड़ी योग्यता से किया है। गाँधी जी ने भी कहा है- अगर अहिंसा हमारे जीवन का प्रधानमंत्री है तो कहना होगा कि देश का भविष्य स्त्रियों के हाथ में है।[25] भारत का वर्तमान महिला आन्दोलन और उसकी दशा-

वर्तमान में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली परिवर्तन यह हुआ है कि अब महिलाएँ घर की चारदीवारी में बंद नहीं रहना चाहती। वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर समाज के विकास में अपनी हिस्सेदारी स्थापित करना चाहती है तथा राष्ट्र व देश की उन्नति में अपना सकारात्मक सहयोग देना चाहती है। साथ ही पुरूषों में भी अब उसकी महत्ता को समझना व स्वीकार करना आरम्भ कर दिया है। पुरूष समझ चुका है कि उसके अधूरे जीवन को संपूर्णता तक पहुँचाने और सफल बनाने का सिर्फ एक ही मार्ग है वो है स्त्री का सहयोग।

सब देव-देवियों एक ओर, ऐ माँ मेरी तू एक ओर

निज रक्त माँ से तन-तन में तूने अपना ही प्राण दिया।

नव सुधा डाल वक्षस्थल से इस जीवन का निर्माण किया,

तेरे पद पद्मों में मेरी श्रद्धा, असीम आद अधोर,

सब देव देवियाँ एक ओर, ऐ माँ मेरी तू एक ओर।[26]

डा. विश्वनाथ प्रसाद के साथ-साथ लोचन प्रसाद पाण्डेय जी ने भी नारी की महत्ता का बखान कुछ इस प्रकार किया है-

जननी बहन स्वरूप में, प्रेम दया अनुराग,

गृहिणी बन अर्पित करे सेवा आत्मत्याग।

सेवा आत्म त्याग भरे शुभ सगुण तुम्हारे,

सुमन बिछाते कंटक पथ में सदा हमारे।

तुमसे जाति समाज सहित पावन है अवनी,

नारी! तुम हो धन्य नरों की विक्रम जननी।[27]

आज पुरूष को नारी का महत्व समझ आने लगा है। नारी भी पहले की अपेक्षा अपने अस्तित्व और अपने अधिकारों के प्रति ज्यादा सजग हो गयी है। वह समझ चुकी है कि उसका जन्म सिर्फ पुरूष सेवा करने को नहीं हुआ है वह उसकी अर्धांगिनी

है, आधा हिस्सा है वह पुरूष की चरण वंदिनी नहीं बल्कि उसकी सहचरी है। उसके अन्दर समाहित गुण जैसे ममता, स्नेह, त्याग, सेवा का भाव आदि उसकी विशेषता है, कमजोरी नहीं। उसे भी अपने जीवन को उन्नत बनाने का पूरा अधिकार है।

लोचन प्रसाद पाण्डेय के शब्दों में देखिए-

नारी! तू अर्धांगिनी नर की, सब सुख-मूल

घर बैकुण्ठ समान हो, जब हो तू अनुकूल।

जब तू हो अनुकूल बहन, पत्नी, जननी बन,

पाव हो प्रति भव, शान्ति सुखमय हो जीवन।

धन- वैभव, शुचि, स्वास्थ्य, शील, सद्गुण, बलधारी,

बन जाता वह देश जहाँ है साध्वी नारी।[28]

स्पष्ट है कि नारी ही वह है जो पुरूष के जीवन में सुख की सरिता प्रवाहित कर उसमें आशाओं के नये-नये पुष्प खिलाती है। उसे जिन्दगी काटना नहीं, जिन्दगी जीना सिखाती है और उसे कामयाबी उसी के हाथ होती है। एक नारी ही है जो अपने सद्व्यवहार आन्तरिक गुणों और आत्मविश्वास से एक पुरूष के जीवन की कठिनाईयों को दूर करके उसमें आशाओं का रंग भरती है और उसके जीवन में पग-पग पर अपनी अहम् भूमिका का निर्वाह करती है। उसके साथ के बिना वास्तव में पुरूष का जीवन अधूरा है। किन्तु यह विडम्बना ही है कि पुरूष के जीवन में इतना महत्वपूर्ण स्थान रखने के बावजूद भी नारी आज भी सुरक्षित नहीं है। जगह-जगह उसकी अस्मिता को रौंदा जाता है उसको अपमानित और प्रताड़ित किया जाता है, और उसे आज भी उसके अधिकारों से वंचित रखा जाता है यह वास्तव में निन्दनीय और घृणास्पद स्थिति है और साथ ही गहन चिंतन का विषय भी। आज नारी को इस दयनीय स्थिति से छुटकारा पाने हेतु अपने अधिकारों और योग्यता को पहचान कर आगे आना होगा, संघर्षशील बनना होगा, साथ ही पुरूष समाज को भी अपना पूरा योगदान देना होगा, जिससे नारी इस विषमता भरी स्थिति से बाहर आ सके। तभी एक स्वस्थ व सुखी समाज का निर्माण संभव है और तभी देश की उन्नति भी।

स्त्री विमर्श की भारतीय अवधारणा-

स्त्रीवादी विमर्श स्त्री की मानवीय अस्मिता की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। वह स्त्री की उपस्थिति को लक्षित करने वाली इस कालजयी मान्यता को स्वीकारता है कि स्त्री आधी दुनिया है, लेकिन तराजू और पैमाना लेकर स्त्री-पुरुष के लिए जमीन और आसमान, घर और समाज, संसद और सड़क को आधा-आधा बाँट देना नहीं चाहता। वह स्त्री-पुरुष की परस्पर पूरकता या विलोम जैसी अन्तहीन बहस में माथापच्ची करने की बजाय दोनों को मनुष्य समझना-समझाना चाहता है, जिन्हें निजी स्तर पर बराबर भौतिक स्पेस की जरूरत है, तो पारस्परिक स्तर पर भावनात्मक सहयोग की। जाहिर है तब 'आदम की पसली से निर्मित हव्वा' या 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' जैसी कुत्सित सांस्कृतिक संरचनाएँ न केवल खारिज हो जाती है बल्कि इन्हें जन्म देने वाली मानसिकता की शिनाख्त की जरूरत भी सक्रिय हो जाती है। बस, यही से स्त्रीवादी विमर्श आँख की किरकिरी बन जाता है, क्योंकि दूसरों की जमीन पर कब्जा जमाकर अपना कारोबार चलाने वाले इज्जतदार घुसपैठियों पर यह नालिश ठोंकने लगता है। समाज का इज्जतदार तबका इसे टिड्डे के पंख उग आना मान कर मसलने को आमदा ना हो, तो क्या करे? स्त्रीवादी विमर्शकारों की प्रतिबद्धता इस वर्चस्ववादी वर्ग को जेंडर सेंसिटाइज करने की है। अपनी वर्तमान दशा से स्त्रियों को असन्तोष था और उनकी सबसे बडी आकांक्षा थी- स्वतन्त्रता और समानता। इस आकांक्षा की अभिव्यक्ति स्त्री जीवन में विविध रूपों में हुआ करती थी।

20वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों के इस स्त्री आन्दोलन में जागरुक और संवदेनशील पुरुषों से बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। वे इस आन्दोलन के जागरुक एवं सक्रिय सिंपैथाइजर थे। इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि स्त्रियों की आकांक्षाओं को शब्द देने वाले अधिकांशत: पुरुष थे। अगर सतही स्तर पर देखें तो आज का समाज स्त्रीमुक्ति को लेकर ज्यादा संवेदनशील दिखाता है। वह कहीं स्त्री मुक्ति, स्त्री विमर्श का स्वप्न, राजनीति में आरक्षण देने का वायदा पूरा करके देना चाहता है तो कहीं गर्भनिरोध गोलियों को टैक्स फ्री करके। यह स्पष्ट है कि समाज का वह पूरा प्रयास मात्र पितृसत्तात्मक समाज की परंपरागत सोच पर या मुलम्मा चढ़ाने का प्रयास भर है, गर्भनिरोधक गोलियों से मिलने वाली आजादी तो पुरूषों को

किसी भी महिला का देह-शोषण करने का खुला आमंत्रण जैसा है। कुछ ऐसे ही कारण है जिनके कारण यह कहा जाता है कि स्त्री आंदोलन देह की आजादी की मांग तक ही फंस कर रह गए है। आज के सारे स्त्री विमर्शवादी नारे जाने अनजाने फूहड़ता की मांग करते नजर आते है। ये नारे सेक्स में बराबरी हाफ पैंट या बिकनी ड्रेस की मांग को ही आजादी के प्रतीक समझते है। अब पुरूषवादी समाज को कुंठित वासनाओं की तृप्ति के लिए ज्यादा भटकना नहीं पड़ता, क्योंकि बिना पंख मजबूत किए ही चिड़िया ने उड़ान भर दी है।

स्त्री विमर्श, स्त्री मुक्ति के प्रश्न पर चिन्तन और वैचारिक संघर्षों की शुरूआत दो शताब्दियों से भी कुछ अधिक समय पहले, अमेरिकी और यूरोपीय बुर्जुआ जनवादी क्रान्तिकारी की पूर्ववेला में हुई थी, जब प्रबोधनकालीन आदर्शों से प्रभावित और जनान्दोलनों में सक्रिय जागरूक स्त्रियों में मनुष्य के प्राकृतिक अधिकार और स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व की घोषणाओं को स्त्रियों के लिए लागू करने की मांग उठायी। ‘‘तब से लेकर आज तक, विश्व के प्राय: सभी हिस्सों में, स्त्री आन्दोलनों का, स्त्री पुरुष समानता एवं स्त्री अधिकारों के विविध पक्षों को लेकर चली बहसों का और स्त्री प्रश्न पर चिन्तन का, सुदीर्घ इतिहास हमारे पीछे पसरा पड़ा है।"[29] जनवादी क्रान्तियों, सर्वहारा क्रान्तियों राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों में स्त्रियों की भागीदारी और विभिन्न सामाजिक क्रान्तियों के बाद स्त्रियों की स्थिति में आये परिवर्तन तथा स्त्री विमर्श के नवीन आयामों को उद्घाटित किया है।

वास्तव में स्त्री मुक्ति तो सभी प्रकार के भयों से मुक्ति होती ना कि टुकड़ो में मिली आजादी। अगर हम साहिर लुधियानवी के शब्दों में कहें तो-

मर्दों ने बनाई जो रस्में उनको हक का फरमान कहा

इस्मत के बदले रोटी दी और उसको भी एहसान कहा।[30]

लेकिन सकारात्मक पक्ष यह है कि आज की स्त्री अब अपनी स्थिति को जाँचती परखती है और अपने लिए आजादी के नए प्रतीक भी खुद गढ़ रही है। जैसे कवयित्री अनामिका अब स्वयं को मात्र नूरजहां कहे जाने से संतुष्ट नहीं है बल्कि हीरें

जवाहरात से लदी रानी नूरजहां और आटे की टीन खुरचती नूरजहां की बेबाक तुलना भी करती है-

किसकी नूरजहां हूँ मैं

इस अँधियारे कमरे में यों

टीन खुरचती आटे की।[31]

अब आज की लड़कियां किसी की नूरजहां बनने से पहले स्वत्व की खोज करना चाहती है, हॉकी खेलना चाहती है, बाप-भाई के पुरूषवादी समाज से वास्तविक आजादी प्राप्त करना चाहती है। यही कारण है कि अब कात्यायनी खिलते हुए गुलाब जैसे परंपरागत प्रतीकों के आजादी के अर्थ को छीनकर हॉकी खेलती लड़कियों में चिपका देती हैं।

आज शुक्रवार का दिन है

और इस छोटे से शहर की वे लड़कियां

खेल रही है हॉकी

खुश है लड़कियां

फिलहाल.....[32]

पितृसतात्मक समाज में औरत होना तभी प्रामाणिक है, जब तक वह किसी की औरत हो। कवयित्री सविता सिंह अपनी कविता में किसी की औरत के प्रतीक को जो की गुलामी का प्रतीक है। अपनी औरत जो की स्वत्व की खोज का प्रतीक के प्रतीक से अदला बदली करके नए प्रतीक गढ़ती है.....

क्या हुआ जो औरतें नहीं चाहती किसी और की औरत होना

है कौन सी ऊटपटाँग नई बात कि वे अपनी औरत है

कि वह अपनी औरत है,

अपना खाती है,

जब जी चाहता है तब खाती है,

और किसी की मार नहीं सहती.....[33]

19वीं शताब्दी में स्त्रीवादी आंदोलनों ने यह माना कि वास्तविक स्त्रीमुक्ति तभी हो सकती है जब स्त्रियां आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र हो। यही कारण है कि अमेरिकी स्त्रीवादी लेखिका बेट्टी फ्रेउन अपने द प्रॉब्लम देट हेज नौ नेम एक बेनाम समस्या में वास्तविक स्त्रीमुक्ति की खोज आर्थिक स्वतंत्रता में करती है। आज के समाज में स्त्रियों के आर्थिक हालात सुधरें है। वे पैसा कमा रही है, नौकरी कर रही है और दूसरों को नौकरी दे भी रहीं है लेकिन वास्तविक स्वतन्त्रता से कोसों दूर है। नीलेश रघुवंशी जी की कविता इस दुनिया को बेटी का कमाना भी उसे परिवार से जोड़ नहीं पाता। वह पराई ही बनी रहती है.....

जिस पर

पिता की सख्त हिदायत भाई की धूरती ऑखें

हँसेगी दुनिया हम पर

बेटी के पैसों पर कर रहे हो ऐश

कुछ लेना तो दूर माँ खाती पीती भी नहीं अब मेरा।

बेटी का खाएँगें तो जाएँगें नरक में।

इस दुनिया को तोड़ मरोड़ कर

बनानी चाहिए एक नई दुनिया

बेटी जिससे पराई न हो।[34]

कवि जब अपनी कविताओं में मध्यवर्ग की रीढ़हीन भली स्त्री की बात करता है तो साथ ही साथ सिमोन द बोउआर के स्त्रीवादी आंदोलन की अलख को भी आमंत्रण देता नजर आता है.....

मध्य वर्ग की भली स्त्री

इतनी रीढ़हीन क्यों हो तुम ।

सिमोन द बोउआर

तुम्हारी यात्राओं के नक्शें से कैसे अछूता रह गया मेरा देश ।[35]

यहाँ यह रेखांकित कर देना आवश्यक होगा कि मध्यवर्ग की अपेक्षा निम्नवर्ग और उच्चवर्ग ने औरतों को ज्यादा स्वतंत्र कर रखा है। एक वर्ग कह रहा है कि पूंजीवादी व्यवस्था में ही स्त्रियों को स्वतन्त्रता मिल सकती है लेकिन आज का बाजार किस तरह की आजादी स्त्रियों को दे रहा है इसकी बानगी इस कविता में स्वत: दिख जाएगी। जहां कमर दर्द की दवा बेचने के लिए सुडौल सुंदर कमर को दिखाना जरूरी समझा जाता है। विज्ञापन बनाने वाले पितृसत्तात्मकता की भूखी वासना भरी नजरों में दांव लगाते है.....

एक दवा उसे कमर दर्द से बचाती है

वह कई घरों को इसी तरह रखती है दुरूस्त

बेहिचक दिखते है उसके छिपे हुए अंग

बनते है सुंदरियों के इतिहास

खरीदनी है अगर दवा तो देखो स्त्री को

दर्द से ज्यादा असरदार है उसकी कमर....[36]

घर से बाजार तक के हलफनामों में स्त्रियों को अपने अधिकारों या व्यथा के लिए चीखने की जगह नहीं है। बाजार को सुंदर मुस्कराता हुआ चमकदार चेहरा चाहिए। नींद से भरी ओर थकी हुई आँखें ना तो बाजार की पसंद ना ही दफ्तर से लौटे पति को। दोनों की एक ही मांग है, उपभोक्ता के लिए एक तरोताजा चेहरा.....

सो कर उठते हो

मेरा घर चीखता है

मुझे साफ करो...

तभी चीखता है बेटा

मुझे जल्दी तैयार करो

उसी समय चीखते है पति

मेरे कपड़े प्रेस नहीं है

और भागती हुई सी

पहुँचती है दफ्तर

तो चीखता है बॉस

देर रात को लौटते है पति

और मुझे तरोताजा न देखकर

बडबड़ाते है।

तो जो चाहता है

मैं भी चीख पड़ूँ

जोर जोर से....[37]

हालांकि अभी भी मध्यवर्गीय स्त्री की चीख मात्र चीत्कार ही बनी हुई है। पुरूषवादी समाज औरतों के चीखने को या तो विद्रोह मानता है या फिर अपशगुन। सबसे बड़ी बात यह है कि समाज स्त्रियों की आजादी के लिए बड़े बड़े नारे लगता है। जंतर मंतर से लेकर इंडिया गेट तक कैन्डल मार्च करता है, मिडिया में बड़ी बड़ी बहसें करता हैं। किन्तु बड़ी ही सावधानी से औरतों के संगठन के विरोध में रहता है.....उन्हें

पसंद नहीं हैं

चीटियों का संगठन बनाना

कि चीटियाँ सियासी

और समाजी मुद्दों पर

अपनी राय दें

उनका मानना है

कि चीटियों का

जन्म ही इसलिए होता है

कि वे रानी चींटी के अंडे

और पूरे कुनबे के लिए

रसद ढोएँ....[38]

अंततः ये सत्य तो स्पष्ट है कि मात्र स्त्रीवादी आंदोलनों नारी और आर्थिक आजादी भर से स्त्रियों को वास्तविक आजादी नहीं मिल सकती है। तो प्रश्न है कि स्त्रीमुक्ति कैसे संभव है? मेरा मानना है कि कोई भी समाज मात्र मानववादी समाज होना चाहिए ताकि पुरूषवादी या फिर कथित स्त्रीवादी। हमें समाज के मन में गहरे बैठे पुरूषवादी माईंड सेट को बदलना होगा, परिपक्व आदमी को बदलने के बजाए अपने किशोर लड़कों की सोच को पकड़कर सुधारना होगा। औरत को आजादी का सबक पढ़ाने के बजाए अपनी किशोर हॉकी खेलती लड़कियों को आजादी का मतलब बताना होगा। नहीं तो नारे गढ़े ही जा रहे हैं, इन्हीं नारों के शोर में स्त्री आजादी की एक थाप मेरी भी.... खैर.....।.

नवम्बर 1915 में श्री रूद्रदत्त भट्ट का लेख छपा- "स्त्रियों की दशा पर दो चार सामान्य विचार।" लेखक भारतीय नारी के प्राचीन गौरव की बात करते हुए बताता है कि आज स्त्रियों के विषय में पुरुषों के विचार है- प्रथम श्रेणी लेखक सबसे कुत्सित बताता है ऐसे लोगों की है जो स्त्रियों को केवल पुत्र उत्पन्न करने की मशीन और भोजन बना देने वाली मशीन समझते है। ऐसे लोग स्त्रियों को महानीच, मूर्ख और

कलहप्रिय समझते है, दूसरी श्रेणी के वे लोग है जो यह समझते है कि अच्छे भोजन, वस्त्र और आभूषण से स्त्रियाँ सुखी और प्रसन्न रहती है। घर की चाहर दीवारी के भीतर बन्द स्त्री उनकी मान-मर्यादा होती है। तीसरी श्रेणी उन विद्वान पुरुषों की है जो जानते है कि स्त्री सुधार की कितनी आवश्यकता है, पर समाज के भय और साहस की कमी के कारण कुछ कर पाने में असमर्थ है। बीसवीं सदीं में बुद्धिवाद चिन्तन के केन्द्र में आ गया। सभी परम्परागत संस्थाओं को जबरदस्त चुनौतियाँ दी गई। इस पूरे दौर का समाज के सभी हिस्सों पर गहरा असर पड़ा। औरतों के अधिकार का प्रश्न भी तभी से उभर कर सामने आने लगे। मेरी बुलस्टण, क्राफ्ट, वर्जीनिया बुल्फ, सिमोन द बोउआर, बेट्टी फ्रीडन, केट मिल्लर आदि स्त्रीवादियों ने स्त्रियों की स्थिति पर गहरा असन्तोष व्यक्त किया।

वैदिक वाड़्मय में सर्वाधिक प्राचीन और सर्वाधिक महत्वपूर्ण ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 2006 मन्त्रों में से मात्र तीन मन्त्रों का नारियों द्वारा रचित होना और उसमें भी सेक्स को ही वर्ण्य-विषय बनाना उस काल में नारियों की दयनीय दशा का स्वत: परिचय दे देता है। स्त्रियों के विषय में ऋग्वेद में जो विवरण आये है उनके अनुसार स्त्री का मन चंचल होता है, उसे नियन्त्रण में रखना असम्भव सा हैं"[39] उसकी बुद्धि भी छोटी होती है।"[40] स्त्री पर भरोसा नहीं किया जा सकता। वह अपवित्र होती है और उसका हृदय भेड़िये जैसा क्रूर होता है।"[41] पति युक्त स्त्री ही अभिनन्दनीय होती है। स्त्री को पर्दे में रहना चाहिए और अपने शरीर को अच्छी तरह ढककर रखना चाहिए।"[42] नारी को संसार का सबसे बहुमूल्य रत्न कहा गया है। वह त्याग, बलिदान, सेवा, समर्पण, वात्सल्य की प्रतिमूर्ति है। सामाजिक दृष्टि विधान में नारी पुरुष की पूरिका बनकर आयी है। साहित्य की ऐसी कोई विधा नहीं जिसमें नारी का चित्रण न किया गया हो, परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि भारतीय समाज में आज भी नारी अपने अस्तित्व को लेकर संघर्षरत है। ऋग्वेद के अनुसार स्त्री एक खेत के समान होती है जिसमें पुरूष अपना बीज बोता है और जाहिर है कि खेत की उपज पर खेत का नहीं उसके मालिका का अधिकार होता है। इस काल में स्त्री को अनृत करनेवाली, पति के द्वारा क्रीत होकर भी दूसरों का प्रसंग करने वाली कहा गया है। इस काल की नारी व्यक्ति से वस्तु हो चुकी थी। उसका खरीद-फरोख्त होता था।"[43]

स्त्रियों के सम्बन्ध में जो व्यवस्था मनु ने दी है-

याज्ञवल्क्य अत्रि, वशिष्ठ, विष्णु, हारित, उसना, अंगीरा, यम, आपस्तम्ब, कात्यायन, बृहस्पति, पाराशर, शातातप, कण्व, गौतम, दक्ष, देवल, प्रजापित, बोधायन, गोभिल, नारद, प्रचेता, जाबालि, शौनक, उपमन्यु, पुलस्त्य, कश्यप, शाण्डिल्य, आदि सभी स्मृति कारों ने लगभग उसी का समर्थन किया हैं। मनु के अनुसार स्त्रियों के कोई भी संस्कार वेदमन्त्र द्वारा नहीं होते, क्योंकि इन्हें श्रुति-स्मृति का अधिकार नहीं हैं। ये निरीन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रिय विहीन, अर्थात् अज्ञान, अमन्त्रा पाप दूर करने वाले जपमन्त्रों से रहित हैं। इनकी स्थिति ही अनृत अर्थात् मिथ्या हैं। तात्पर्य यह कि नारी की स्वतन्त्र सत्ता या स्वतन्त्र स्थिति है ही नहीं।"[44] स्त्रियों के लिए पृथक कोई यज्ञ नहीं है, न व्रत है न उपवास। केवल पति की सेवा से ही उसे स्वर्ग मिलता है।"[45] जप, तपस्या, तीर्थ यात्रा, संन्यास-ग्रहण, मन्त्र साधन और देवताओं की आराधना इन छः कर्मों को करने से स्त्री और शुद्र पवित्र हो जाते है।[46] जिस स्त्री को तीर्थ में स्नान करने की इच्छा हो उसे पति का चरणोदक पीना चाहिए।"[47] मनु के अनुसार स्त्री को स्वतन्त्रता का अधिकार नहीं। उसे कौमार्यावस्था में पिता के, युवावस्था में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहना चाहिए।"[48]

मनुस्मृति के अतिरिक्त महाभारत, अन्य स्मृतियों एवं पुराणों ने भी स्त्रियों पर घोर नैतिक लांछन लगाये है। महाभारत के अनुसार स्त्रियाँ अनृत झूठी हैं। स्त्रियों से बढ़कर कोई अन्य दुष्ट नहीं है। ये एक साथ ही उस्तरा की धार क्षुर धार हैं, विष है, सर्प और अग्नि है। सैकड़ों हजारों में कहीं एक स्त्री पतिव्रता मिलेगी स्त्रियाँ वास्तव में दुर्दमनीय हैं वे अपने पति के बन्धनों में इसलिए रहती हैं कि उन्हें कोई अन्य पूछता नहीं, प्यार नहीं करता, क्योंकि वे नौकरों-चाकरों से डरती है। हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार पति-पत्नि का सम्बन्ध इसी जीवन का नहीं अपितु जन्म जन्मान्तर का है। मनु के अनुसार भी स्त्री और पुरूष मिलकर एक व्यक्तित्व बनते हैं।"[49] पति-पत्नि के रूप में स्त्री-पुरूष के अविच्छेद्य सम्बन्ध-सम्बन्धी हिन्दू धर्मशास्त्र के इस विधान को सभी धर्मनिष्ठ हिन्दू बड़ी श्रद्धा से देखते हैं, और यह समझते है कि विवाह सम्बन्ध दो आत्माओं का मिलन होता हैं। परन्तु अफसोस है कि स्वार्थान्ध पुरूष वर्ग और अफीम के नशे के कारण अधिकांश नारियाँ भी इस सिद्धान्त को व्यावहारिक

जीवन से जाँचने की कोशिश कभी नहीं करती। यदि आप थोड़ा तटस्थ होकर विचार करें तो पाएँगें कि यह दो आत्माओं का मिलन सिर्फ दो शरीर का मिलन मात्र बनकर रह जाता हैं।

मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य निर्वाण के लिए तथागत ने जिस मार्ग का प्रवर्तन किया उसमें दुनिया की आधी आबादी स्त्रियों के लिए कोई सम्मानित जगह नहीं थी। एक पितृसत्तात्मक समाज में पुरूष के लिए जो स्वाभाविक था उसी तरह का दृष्टिकोण तथागत का भी हुआ। बाद में जब आनन्द ने बार-बार आग्रह किया तब जाकर औरतों को संघ में जगह मिली, वह भी अत्यन्त कठोर और अपमानजनक प्रतिबन्धों के साथ। वस्तुत: बुद्ध का निर्वाण भी पहले पुरूषों के लिए ही सुरक्षित था। बुद्ध भी स्त्रियों को चारदीवारी में बन्द रहकर पति तथा पति के परिजनों की एकनिष्ठ सेवा के प्रति ही हिमायती था। जो चाबुक की चोट से निडर रहने वाली है, सब कुछ सहकर शान्त रहने वाली है पवित्र हृदयवाली है, क्रोध से मुक्त है, उसको दिया जाए दासी और पानी का नाम।"[50]

इसी काल के अन्त में वज्रयानी साधकों ने जब स्पष्ट घोषणा कर दी कि संयम से नहीं, अभितृप्ति से सिद्धी होगी, फिर क्या था, रजक, चर्मकार आदि की कुमारिकाओं से पुरूष कुकृत्य करके सिद्धी प्राप्त करने लगे।"[51] इस काल में नारियाँ अतिथियों के सत्कारार्थ अर्पित की जाने लगीं। उत्तर में योगिनी और दक्षिण में देवदासी के रूप में यतियों के यत्न का केन्द्र हुईं। कलिंग से कामरूप, कामरूप से विन्ध्यांचल तक शक्ति के रूप में नारी नंगी पूजी जाने लगी और उसकी संज्ञा कुमारी हुई। इस काल में नारी ने जो-जो दुख सहे मर्दों यतियों और साधकों के कुकृत्य सहे, वह सब अकथनीय है।

उड़ीसा के मन्दिरों पर तो फिर खुल्लमखुल्ला नारी के घृणित नग्न चित्रण किये गये। जो गोप्य था, घर की चारदीवारी के भीतर गुहा कर्म था, वह देव मन्दिरों की बाहरी दीवारों पर अंकित किया गया। आदिकाल से लेकर रीतिकाल के अन्त तक समूचे हिन्दी साहित्य जगत में नारी का कामिनी रूप ही चित्रित किया गया। पीयूषवर्ष में जयदेव ने राधा-कृष्ण के जिस श्रृंगारिक स्वरूप की प्रतिष्ठा की थी, इस काल में

उनकी खूब छीछलेदार हुई। वे सामान्य नायक-नायिका से भी गये बीते चित्रित किये गये। अन्य कवियों की कौन कहे, तुलसी और कबीर जैसे प्रगतिशील कवि भी नारी के मामले में अपनी परम्परा से नहीं उबर सके।"[52]

इस्लाम में नारी की दशा का आंकलन करने के लिए संक्षेप में इस्लाम के इतिहास एवं उसके अतीत का वर्णन जरूरी है। इस्लाम के प्रवर्तक पैगम्बर मोहम्मद अरब में पैदा हुए। अत: इस्लाम का मूल ईसा की सातवीं शताब्दी के अरब के कबीलाई समाज में विद्यमान है। अरब के इस पितृसत्तात्मक कबीलाई समाज में समस्त उत्तरदायित्व, कर्तव्य एवं अधिकारों की परिभाषा तथा मान्यता एक ही पिता की सन्तान के रूप में होती थी। इस समाज में स्त्री का कोई स्थान अथवा पद नहीं माना जाता था। विवाह का अनुबन्ध कन्या का मूल्य चुकाने पर होता था और इस तरह कन्या खरीद ली जाती थी और उसे चल-सम्पति को आतिथ्य सत्कार के लिए पत्नी सौंप दी जाती थी। इसके लिए अरब विख्यात थे।"[15] "जब कोई पुरूष यात्रा पर जाता तो अपनी पत्नी को अपने मित्र के पास भोग-विलास के लिए छोड़ जाता अथवा श्रेष्ठतर वीर्य की इच्छा पूरी करने के लिए किसी ओर पुरूष को दे देता और गर्भ के पर्याप्त विकसित होने पर पुन: उसे ले जाता।"[16] वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं का अस्तित्व एक संकट पूर्ण अवस्था से गुजर रहा है। आज प्रत्येक देश में महिलाओं को अधिक से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है तथा उनको सुरक्षित एवं समाज में पुरुषों के समान दर्जा देने के प्रत्यन किये जा रहे है। लेकिन इसके बावजूद भी आज विश्व में कोई भी ऐसा देश, प्रदेश, नगर, कस्बा व गांव नहीं है। जहां पर महिला उत्पीड़न, महिलाओं के प्रति अन्याय व क्रूरता जैसी घटनायें घटित न ही हों अर्थात् विश्व में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर महिलायें अपने आपको सुरक्षित महसूस कर रही हो। आधुनिक काल में भारतीय नारियों ने जितनी प्रगति की है। वह श्लाघनीय है। यही वह समय है जब स्त्रियों ने सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष किया।

स्त्री-विमर्श की पाश्चात्य अवधारणा-

ऐतिहासिक विकास क्रम में स्त्री की पहचान के नाम पर सिर्फ उसका शरीर रह गया है। स्त्री की अस्मिता के निर्माण के लिए जरूरी है कि उसकी चुप्पी को तोड़ा जाए। स्त्री जब बोलती है तो अपने भावों की अभिव्यक्ति ही नहीं करती अपितु अपने संसार को नए सिरे से बनाती है। बीसवीं शती के मुक्ति संघर्षों से नारी मुक्ति का संघर्ष अधिक विस्तृत हो गया है। यह संघर्ष आत्म बोध, आत्म विश्लेषण और आत्माभिव्यक्ति का संघर्ष है। स्त्रीवाद की बुनियादी चिंता है- स्त्री मुक्ति सभ्यता के आदिकाल से नारी पुरुष वर्ग द्वारा शोषित होती आ रही है। केट मिलेट, जर्मेन ग्रियर आदि पश्चिमी लेखिकाएँ मानती है स्त्री होना एक ऐतिहासिक घटना है, वह जन्म से स्त्री नहीं बल्कि हजारों साल की सभ्यता ने उसे वस्तु के रूप में परिणत कर दिया है। क्षमा शर्मा कहती है "स्त्रीवादी विमर्श न मजाक है, न अपवाद। .वह एक ही समय हमारे देश, काल और पूरी दुनिया से जुड़ा है, वह हमारे समय की जरूरत है।"[53] आधुनिक युग में सम्पूर्ण विश्व में नारी शक्ति के जागरण का सम्बन्ध पाश्चात्य जगत में हुए नारी मुक्ति आन्दोलनों से माना जाता है। नारीवाद पारंपरिक ज्ञान और दर्शन को चुनौती देता है। ऐतिहासिक रूप में हम पुरुष प्रधान समाज में रहते है। जहाँ स्त्री ज्ञाता नहीं ज्ञान की विषय वस्तु है इसके विपरीत नारीवादी सिद्धांत स्त्री केन्द्रित ज्ञान की चर्चा करता है। मिल के मतानुसार- ''प्राचीन काल में बहुत से स्त्री पुरुष दास थे। फिर दास प्रथा के औचित्य पर प्रश्न उठने लगे और धीरे-धीरे यह प्रथा समाप्त हो गयी लेकिन स्त्रियों की दासता धीरे-धीरे एक किश्त की निर्भरता में तब्दील हो गयी।"[54]

नारीवाद के विकास के साथ-साथ नारीवादियों के दृष्टिकोण में भी काफी परिवर्तन होता गया। कोई एक विचारधारा स्थिर नहीं रही पारम्परिक दर्शन से न केवल स्त्री के बौद्धिक प्रयास का मूल्यांकन किया अपितु स्त्री के निजी मूल्य बोध को भी तुच्छ किया है। दार्शनिक चिन्तन के जगत में स्त्री भी अपना स्थान बना सकती थी, किन्तु पारंपरिक दर्शन पुरुष केन्द्रित सोच तक ही सीमित था। जैसा की एलिसन जेगर कहती है कि दुनिया को तोलने का पुरुषों का नजरिया है। हालांकि कुछ दार्शनिक जैसे प्लेटो, जॉन स्टुअर्ट मिल एवं मार्क्स ने स्त्री पुरुष को समकक्ष रखने

की चेष्टा की किन्तु अधिकतर दार्शनिको अरस्तू, कान्ट, हिगल और नीत्शे को स्त्री जाति की बौद्धिक और तार्किक क्षमता पर गहरा सन्देह था।

महान दार्शनिक देकार्ते ने जब यह कहा कि मैं सोच सकता हूँ। अत: मैं हूँ तो सोच वाली से उनका आशय पुरुष की सोच था। उनके अनुसार स्त्री की तर्क क्षमता पुरुषों की तरह विकसित नहीं। स्त्री विचारकों ने स्त्री सम्बन्धित न केवल नये सिद्धांतों को प्रतिपादित किया बल्कि स्त्री जीवन के अन्य विभिन्न प्रसंगों पर ज्ञान, कार्य और यथार्थ का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत किया, जिससे स्पष्ट हुआ कि स्त्रियों का एक मिश्रित समूह है। नारीवादियों की प्रतिबद्धता इन दार्शनिक विचारों के प्रति नहीं है। नारीवाद पर इन विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव अलग-अलग नारीवादी आंदोलनों के नाम में दिखाई पड़ता है- उदार नारीवाद, मार्क्सवादी नारीवाद, मनोविश्लेषणवादी नारीवाद, अराजक नारीवाद एवं सामाजिक नारीवाद आदि। इनमें उदारवादी नारीवाद का एक लम्बा इतिहास रहा है जैसे अट्ठाहरवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के विचारक मेरी उलन एस्टोक्राफ्ट (1759-1873), हेरियट टेलर (1807-1858), जान स्टुअर्ट (1806-1873) आदि।

उदारवादियों ने ऐसी सामाजिक संरचना करनी चाही थी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का महत्व हो और उसे समान सुविधा मिले। इन दार्शनिकों ने पितृसत्तात्मक राज्य संरचना का विरोध तो किया, किन्तु पारिवारिक संरचना का विरोध नहीं किया। अमेरिका में समान अधिकार संशोधन बिल पास तो हुआ परन्तु परिवार में सर्वेसर्वा अब भी पति ही था, पत्नी को अभी भी पति के अधीन ही रहना था। इनके अनुसार स्त्रियों को यदि पुरुषों के समान बराबर सुविधा उपलब्ध हो तो वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी कर सकती है। सबसे बड़ा मुद्दा था- गर्भपात का, जो कि अपने आप में एक बड़ी क्रान्ति की मांग थी। स्त्री को मानवीय गरिमा मिलनी चाहिए तथा समाज में पितृसत्तात्मक संरचना को बदला जाना चाहिए। परन्तु उदार नारीवाद सामाजिक एवं आर्थिक रूप से केवल मध्यवर्गीय श्वेत स्त्री के अधिकार एव कर्तव्य का लेखा-जोखा बनकर रह गया।

यही वह समय था कि जब वामपंथी अत्यन्त सक्रिय हुए। सिमोंन की 'सैकेंड सेक्स' प्रकाशित हो चुकी थी। अमेरिका में 1970 में केट मिलेट की 'सेक्सुअल पोलिटिक्स' और सुलामिथ फ्रैयस्तों की 'डॉयलेक्टिक ऑफ सेक्स' प्रकाशित हुई। उदारवादी सुधारपंथियों से बिल्कुंल भिन्न इन नारीवादियों पर मार्क्सवाद का प्रभाव अधिक था। तभी जुलिएट मिशेल की मार्क्सवादी पुस्तक 'वुमेन स्टेट' का भी प्रकाशन हुआ। इनका प्रमुख नारा था- 'दी पोर्सनल इज पॉलिटिकल'। इन्होंने स्त्री को अपनी चुप्पी तोड़ने को कहा तथा सामाजिक मंचों पर दलन पर विचार विमर्श करने के लिए नियन्त्रित किया। शिला रोबॉथम की 'हिडेन फ्राम हिस्ट्री' (1973), एलेन सोवोलटा की ए लिटरेचर ऑफ देयर ओन' प्रकाशित पुस्तकों के अनुसार, स्त्री-दलन का मुख्य कारण निजी सम्पत्ति की अवधारणा है। यह अवधारणा एक ऐसी व्यवस्था को जन्म देती है. जहाँ सत्ता और सम्पत्ति दोनों ही कुछ व्यक्तियों के हाथों तक सीमित हो जाती है। अत: स्त्री-दलन का कारण पूँजीवादी है। मार्क्सवाद से प्रेरित उन्होंने स्त्री की आर्थिक रूप से स्वावलम्बन को ही महत्व दिया।

1970-1980 तक अधिकतर नारीवादी सिद्धान्तों की प्रमुख समस्या स्त्री को अधीनता से मुक्ति दिलाने की रही है और इसके लिए मार्क्स को एक मसीहा के रूप में पाया। शिक्षित स्त्रियाँ, जो बौद्धिक जगत से सम्बन्धित थी, उनके अनुसार- सामाजिक संरचना में निहित दलन का विश्लेषण मार्क्सवाद बड़े व्यवस्थित ढंग से करता है। स्त्री श्रम द्वारा उत्पादन की दो प्रणालियाँ है-एक बाह्य जगत में उत्पादन की तथा दूसरा घरेलू श्रम-जहाँ वह दिन-रात बिना किसी मूल्य के सन्तानोंत्पादन, संतान का भरण-पोषण तथा परिवार के सदस्यों की देख-रेख एवं सेवा में लगी रहती है, जिसका उसे कोई मूल्य नहीं मिलता है। जिसके कारण आर्थिक संघर्ष के साथ-साथ उसे यौन हिंसा व उत्पीड़न भी झेलनी पड़ती है। मार्क्स सन्तानोंत्पादन की क्रिया को एक मूक पशुवत और औचक क्रिया मानते हैं। स्त्री को यह धारणा स्वीकार नहीं। वह केवल भावनात्मक रूप से ही नहीं, बल्कि सामाजिक व आर्थिक रूप से भी ठगी जाती है। मार्क्सवादी नारीवाद श्रम के इस शोषण पर प्रकाश डालता है।

स्त्री आन्दोलन तथा विभिन्न जनवादी और सर्वहारा आन्दोलनों के दबाव के साथ ही पूंजीवादी उत्पादन की अपनी जरूरतों और तकाजों ने स्त्री शिक्षा और स्त्री

श्रम सम्बन्धी कानूनों के निर्माण तथा स्त्रियों की कानूनी स्थिति के आम सुधार में एक अहम भूमिका निभाई। 1847 में ब्रिटेन में स्त्रियों के लिए दस घण्टे का कार्य दिवस निर्धारित किया गया, जिसे मार्क्स एंगेल्स ने मजदूर वर्ग की एक महान विजय बताया था। "स्त्री मजदूरों के संरक्षण सम्बन्धी कुछ और भी कानून पारित हुए। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप और अमेरिका में स्त्रियों की कई यूनियन गठित हुई, जिनमें जर्मनी की जनरल वुमेन्स यूनियन प्रमुख थी। इन यूनियनों का लक्ष्य स्त्री शिक्षा के लिए और स्त्री श्रम पर पाबन्दियों के विरुद्ध संघर्ष करना था। ब्रिटेन की स्त्रियाँ 1860 तक शिक्षण के अतिरिक्त अन्य कई पेशों का अधिकार हासिल कर चुकी थी। 1858 में उन्हें पहली बार तलाक लेने का भी अधिकार मिल गया था। 1860 तक आते-आते न सिर्फ ब्रिटेन में बल्कि कमोबेश पूरे यूरोप और अमेरिका में स्त्री आन्दोलन की मुख्य धारा मताधिकार के प्रश्न पर केन्द्रित हो चुकी थी।"[55]

एंगेल्स आर्थिक उत्पादन की विशद आलोचना करते हुए कहते है कि स्त्री-पुरुष को इसलिए सहर्ष स्वीकारती है कि वह सुरक्षित रहे तथा सन्तान को जन्म देने के अलावा वह पुरुष के बीज रक्षा के रूप में सन्तान का पालन-पोषण अपने भरण-पोषण के लिए करती है ताकि सन्तति को पुरुष की विरासत मिले। मानवीय जरूरत और कामना के सन्दर्भ में मार्क्स और एंगेल्स दोनों ही स्त्री के जीवन में कामना को महज एक बेस्वाद जरूरत मानते हैं। स्त्री मुक्ति आन्दोलन की दो धाराएँ उत्पन्न हुई। पहली धारा का सम्बन्ध पारंपरिक मार्क्सवाद से था, जबकि दूसरी धारा सर्वहार से अलग हटकर स्त्री की समस्या को विश्व मंच पर रखना चाह रही थी। 1968 की छात्र सभा में जर्मन मार्क्सवादी स्त्री कार्यकर्ता हेल्के सेंडर ने कहा, "स्त्री को पहचान तभी मिलेगी, जब वह मंच पर अपने निजी जीवन की समस्याओं को अभिव्यक्त करें और इसी आधार पर राजनीतिक रूप से एकबद्ध होकर संघर्ष करे।"[56] दोनों धाराओं में विवाद का केन्द्रिय मुद्दा था पितृसत्ता।

सुलामित फायरस्टोन ने अपनी पुस्तक "दी डॉयलेक्टिक ऑफ सेक्स" में कहा कि स्त्री वास्तव में जन्म से स्त्रीकरण का शिकार है। स्त्री होने के लिए उसे पुरुष सत्ता का वर्चस्व स्वीकार पड़ता करना है। उग्र नारीवादियों ने बहुत से सामाजिक मुद्दे

विशेषकर चिकित्साशास्त्र, धर्म, प्रजनन, जातिवाद, पर्यावरण और राजनीतिक सिद्धान्तों पर काफी कुछ लिखा है, पर उनका सबसे महत्वपूर्ण विमर्श है-पुरुष सत्ता द्वारा स्त्री कामना का निर्धारण।

पहली बार नारीवादियों ने यहाँ स्पष्ट किया की अपने यौन जीवन में स्त्री को किस-किस प्रकार के उत्पीड़न एवं हिंसा का शिकार होना होता है। बलात्कार, अश्लील साहित्य, अनैच्छिक मातृत्व तथा जन्म-विरोध एवं बाध्यकारी इतरलिंगी कामुकता आदि यौन जीवन के प्रसंग में स्त्री को पुरुष की इच्छा के अधीन रहना पड़ता है। कैथरीन मेक्निन के अनुसार "पुरुष को स्त्री पर वर्चस्व मिलता है, क्योंकि वह यौन जीवन में स्त्री को पीड़ित कर सकता है। कामना के स्तर पर स्त्री से यहाँ अपेक्षा की जाती है कि वह न केवल पुरुष की कामेच्छा के प्रति समर्पण करें, बल्कि पुरुष कामना के उद्दीपन का कारण भी बने।"[57] स्त्री के लिए यह भी कहा गया है कि वह दैहिक दुर्बलता के कारण पुरुषों के संरक्षण में ही सुरक्षित रह सकती है, इसलिए स्त्री के नियन्त्रण और पुरुष के वर्चस्व में ही समाज का हित है। पुरुष समाज समलिंगी स्त्री की कोई सामूहिक भूमिका स्वीकार नहीं करता, क्योंकि कामना के प्रसंग में स्त्री अपना कोई चुनाव नहीं कर सकती, वह तो केवल पुरुष की संतुष्टि के लिए बनी है।

जबकि मनोविश्लेषक नारीवादी नेल्सन गार्नर स्वीकारती है कि समलैंगिकता न केवल स्त्री के लिए सामाजिक है, बल्कि स्त्री के यौन जीवन में यह एक सहज प्राकृतिक इच्छा भी है। चूँकि आरंभिक लगाव माँ के साथ रहता है फिर क्योंकर स्त्री अपने इस प्रेम का त्याग कर पुरुष की ओर झुकती है। नि:सन्देह ऐसा करने से स्त्री को पीड़ा होती है, एड्रियन रिच के अनुसार, "यह पुरुष सत्ता है, उसकी ताकत, जो स्त्री पर इतरलिंगी व्यवस्था को आरोपित करती है। इसी व्यवस्था के माध्यम से पुरुष अपना शारीरिक, आर्थिक, भावनात्मक वर्चस्व स्त्री पर लागू कर पाता है।'[58] जोन्स और ब्राउन ने अपने ऐतिहासिक पर्चे 'टुवर्ड्स ए वीमेंस लिबरेशन मूवमेन्ट' में स्त्री छवि के सुधार के लिए कुछ सुझाव दिये है-

1. स्त्रियों को अपना खुद का इतिहास जानना चाहिए, क्योंकि उनका एक स्पृहणीय इतिहास है, एक ऐसा इतिहास जो उनकी बेटियों में गौरव का भाव

भरेगा ..... हमारी सुधारी हुई स्थिति कई साहसी स्त्रियों के उद्‌गम से सम्भव हुई है। उन्हें छोड़ देने के बजाय हमें उनसे सीखना चाहिए और एक बार फिर लक्ष्य प्राप्ति के अभियान में उन्हें जुटने देना चाहिए। स्त्रीवादी साहित्य, स्त्रीवादी इतिहास की बाजार में मांग है। हमें उसे उपलब्ध कराना चाहिए।

2. जब तक स्त्रियों और पुरुषों के बीच सम्बन्धों का पुनर्गठन नहीं हो जाता, तब तक इस समाज का पुनर्गठन भी नहीं हो पाएगा। घर के अन्दर मौजूद असमतावादी सम्बन्ध ही शायद इन सब बुराइयों की जड़ है। पुरुष कोई भी भयानक कर्म करने या कायरतापूर्वक अपनी आत्मा का हनन करवा कर आदर, सम्मान और यहाँ तक कि प्रेम तक पाने के लिए घर लौट सकता है। इस स्थिति में पुरुष कभी अपनी वास्तविक पहचान या समस्याओं से रूबरू नहीं होगें और हम भी नहीं होगीं।

3. चूंकि स्त्रियाँ शारीरिक बल के भय से बहुत ही आक्रान्त रहती हैं, अत: उन्हें अपनी रक्षा करना सीखना होगा।

4. स्त्रियों को अपने अनुभव आपस में बांटने चाहिए।

5. हमें संचार माध्यमों को मजबूत करना होगा कि वे वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करें।"[59]

मानसिक विश्लेषण के साथ-साथ सामाजिक विश्लेषण करने पर नारीवादियों ने पाया कि स्त्री दलन का कारण केवल पूंजीवाद नहीं है। पुरुषों के मन में जातीय श्रेष्ठता का बोध है। परिवार के केंद्र में आज सत्ता तथा अर्थ की व्यवस्था छन-छन कर पहुँच गई है, जहाँ अहंकेन्द्रित जोड़-घटाव है, हिंसा है, स्त्री की सेवा, श्रम और सेक्स का शोषण है। अत: यौनवादी समाज को ही खत्म करना होगा।

अस्सी के दशक के बाद बहुत से नारिवादियों ने गृहस्थी और श्रम के बाजार में भौतिक विश्लेषण के बदले भाषा के संरचना, प्रतिनिधित्व का अधिकार एवं समस्या तथा सत्ता के विमर्श पर प्रश्न उठाए हैं तथा वैश्विक स्तर पर सामाजिक संरचना

पितृसत्ता और पूंजीवाद के विश्लेषण के बदले विभिन्न संस्कृतियों के विमर्श, विचारधारा और मनोविश्लेषण को प्रस्तुत किया। धीरे-धीरे नारीवादियों में उत्तर-संरचनावाद और उत्तर-आधुनिकतावाद की ओर मुड़ने लगी। जूलिया क्रिस्तेवा ने स्त्रीत्व की चर्चा करते हुए कहा कि- "परिधि पर रहना स्त्री की नियति रही है, वह हमेशा निषेध अर्थात् जो वह नहीं है, के द्वारा ही व्याख्यायित होती रही है।"[60] स्त्री भी बौद्धिकों, श्रमिकों, अश्वेत पुरुषों की तरह परिधिकृत है और इसी कारण महती क्रांन्तिकारी भूमिका की सम्भावना रखती है।

अस्सी के दशक के बाद उत्तर-औद्योगिकवाद, उत्तर-मार्क्सवाद, उत्तर-मानववाद के साथ- साथ "उत्तर" यानि पोस्ट शब्द की विराट पकड़ से नारीवाद भी नहीं बच सका और आधुनिक नारीवादियों के प्रतिनिधित्व पर प्रश्न चिह्न लगे। इसे उत्तर-नारीवाद का दौर कहा जाने लगा। लेकिन श्वेत नारीवादियों को केवल अश्वेत स्त्रियों बल्कि तीसरी दुनिया की स्त्रियों के विरोध का सामना करना पड़ा। प्रश्न उठने लगा कि बिना सोचे समझे आखिर किसलिए इन आधुनिक नारीवादियों ने प्रगति और मानवीय गरिमा के नाम पर बहनापे (बहनत्व) की छतरी के नीचे सबको इकट्ठा किया।

उत्तर-औपनिवेशिक युग (फ्लेक्स 1990) को नारीवाद सिद्धांतकर्ताओं ने कहा कि इस उत्तर-औपनिवेशिक दुनिया में स्त्रीकरण से उत्पन्न जटिल समस्याओं का सामना केवल उत्तर- आधुनिक तरीके से ही किया जा सकता है। स्त्री पुरुष में भिन्नता को सभी स्वीकारते है, मगर अब कहा जाने लगा कि स्त्री-स्त्री में भिन्नता है और इसके बाद भिन्नता के भीतर भिन्नता की बात उठी। हम निजी क्षेत्र में किये सार्वभौमिक स्त्री विमर्श की चर्चा कर रहे है? श्वेत-अश्वेत, तीसरी दुनिया, हमारे अपने देश में सवर्ण एवं दलित ऐसे अनेक विभंजनकारी रेखाए खींची जाने लगी। अत: सारी समस्याओं को एक वृहत्तर प्रसंग में देखना उचित होगा।

उत्तर-आधुनिकतावादियों से अत्यधिक प्रभावित न होते हुए नारीवाद अब भी स्त्री की पहचान को निर्मित करने वाली ऐतिहासिक प्रगति में विश्वास रखता है-स्त्री अपने सार्वभौमिक राजनीतिक उद्देश्यों एवं आदर्शों के साथ अपनी आपसी भिन्नताओं को मद्दे नजर रखते हुए भी दुनिया में एक भाव से अव्यवस्थित है। विशिष्ठ जरूरतों

के अनुसार उसने आधुनिक युग के आदर्शों में बदलाव जरूर किया है परन्तु विरासत को उसकी देन को पूर्णत नकारा नहीं है।

नारीवाद विमर्श का आधार वह विचारधारा होनी चाहिए, जो सत्ता के जनतान्त्रिक सम्बन्धों को समेटकर चले। जो न केवल इतिहास, बल्कि जातीय स्मृति को पुन: परिभाषित करें तथा ऐसा वैश्विक दृष्टिकोण अपनाये, जो मृत्यु के बाद भी जीवन की आशा न छोड़े। यह प्रश्न भी अक्सर सामने आता है कि क्या यह केवल पश्चिमी विचारधारा है? वहां की स्त्रियाँ केवल अपनी समस्याओं से जूझ रही है जहाँ भारतीय समाज में उसकी क्या उपयोगिता? लेकिन यह भी सच है कि पश्चिम केन्द्रित कोई भी विचारधारा हम उसी रूप में नहीं अपनाते जैसे की वहाँ की तकनीक को अपनाते है।

स्त्री विमर्श की पाश्चात्य एवं भारतीय अवधारणा में अन्तर-

1857 में संयुक्त राज्य अमेरिका में महिलाओं और पुरुष के समान वेतन को लेकर हड़ताल हुई थी। इसी दिन को बाद में अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया गया। इसी के साथ विश्वभर में नारी मुक्ति आन्दोलनों की शुरूआत हो चुकी थी। 1975 पूरे विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया गया, जिसके परिणाम स्वरूप कोपेनहैगन में पहला अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन, नैरोबी में दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन 1985 में और शंघाई में तीसरा 1995 में सम्पन्न हुआ।

भारत में इस सम्मेलन की शुरूआत नवजागरण के साथ हुई। राजा राममोहन ने 1818 में सती प्रथा का विरोध किया और उनके प्रयत्नों के फल स्वरूप 1829 में लार्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया। बाल-विवाह, विधवा-विवाह और बहुपत्नी प्रथा के विरूद्ध लड़ते हुए राजा राम मोहन राय स्त्री के पक्षधर नजर आते है। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी स्त्री जाति की चेतना का स्वर बन गए।

हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के अन्तर्गत स्त्री द्वारा लिखा गया और स्त्री के विषय में लिखा गया साहित्य ही स्त्री विमर्श माना जाता है तथा इसके मूल में अनुभव की प्रमाणिकता का तर्क दिया जाता है। महादेवी वर्मा ने 'स्त्री प्रश्न' को पुरुष

के लिए नारी चित्रण अधिक आदर्श बन सकता है, परन्तु अधिक सत्य नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है और नारी के लिए अनुभव। अत: अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त भी शायद ही दे सके। स्त्री मुक्ति का अर्थ पुरूष हो जाना नहीं है। स्त्री की अपनी प्राकृतिक विशेषताएँ है, उनके साथ ही समाज द्वारा बनाए गए स्त्रीत्व के बंधनों से मुक्ति के साथ, मनुष्यत्व की दिशा में कदम बढ़ाना है। यही सही अर्थों में स्वतन्त्रता है। स्त्री को अपनी धारणाओं को बदलते हुए जो भी घटित हुआ, उसे नियति मानने की मानसिकता से उबरने की आवश्यकता है, लेकिन साथ ही साथ पुरुष वर्ग को ही दोषी मानकर कठघरें में खड़े करने वाली मनोवृत्ति बदलनी होगी। स्त्रियों के अधिकारों के लिए लड़ने वाले तथा अपने लेखन व प्रकाशन के द्वारा स्त्री हित विचारने वाले पुरुषों के अमूल्य योगदान को हम विस्मृत नहीं कर सकते।

हिन्दी में पहला स्त्री काव्य संकलन 'मृदुवाणी' (1905) शीर्षक से मुंशी देवी प्रसाद ने प्रकाशित करवाया। इसमें 35 कवयित्रियों की कविताएँ शामिल थी। इसके बाद गिरिजादत्त शुक्ल और ब्रजभूषण शुक्ल ने 'हिन्दी काव्य' कोकिलाएँ' (1993) कृति सम्पादित कर प्रकाशित की। ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' के प्रकाशन में 'स्त्री कवि संग्रह' (1938) प्रकाशित हुआ। यह संभवत: 'स्त्री साहित्य' पाठ्यक्रम के लिए तैयार किया था। इनके अतिरिक्त नामवर सिंह के प्रधान सम्पादकत्व में 'हिन्दी कथा लेखिकाओं की प्रतिनिधि कहानियाँ (1984) एवं रमणिका गुप्ता सम्पादित 'आधुनिक महिला लेखन' (1985) महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। स्त्री चेतना में पत्र-पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पहली पत्रिका 1874 में भारतेन्दु हरिशचन्द्र द्वारा प्रकाशित 'बालाबोधिनी' थी इसके अतिरिक्त 'अर्पणा', "आम आदमी' 'हंस', मानुषी', 'निमित्त', 'उत्तरार्द्ध', 'उद्भावना', 'साक्षात्कार' आदि पत्रिकाओं में स्त्री अंक प्रकाशित हुए।

महिला लेखन की शुरूआत कविता से हुई, जो अधिकतर राष्ट्रीय भावना से युक्त थी। इन्होंने कविता की भाषा को भावाभिव्यक्ति का सरल माध्यम माना। कविता के माध्यम से स्त्री समाज को कवयित्री सम्बोधित करते हुए सन्देश देती है-

'देवियों, क्या पतन अपना देखकर

नेत्र से आँसू निकलते है नहीं?'

1930 के आस-पास महिला रचनाकारों की एक पीढ़ी पूरे उत्साह के साथ रचना कर्म में जुटी, साथ ही साहित्यिक संगोष्ठियों में सहभागिता, पत्रिकाओं का सम्पादन महिला और राजनीतिक संगठनों से जुड़कर सक्रिय रहीं। इन लेखिकाओं की एक विशेषता थी- 'कथनी और करनी में समानता।" हिन्दी की प्रथम कथा लेखिका राजेन्द्र बाला घोष, जिन्हें 'बंगमहिला के नाम से जाना जाता है सन् 1908 की शिक्षा के सम्बन्ध में स्त्रियों की दशा उजागर करती है- "मैं इस लेख में केवल यह बतलाना चाहती हूँ कि भारत की उच्च वंश वाली हिन्दू और मुसलमान महिलाएँ पर्दे में रहती है। पर्दे वाली स्त्रियों को कदापि स्वाधीनता नहीं मिल सकती। इसी कारण उन्हें शिक्षा भी नहीं मिलती। उच्च शिक्षा के साथ स्वाधीनता का घनिष्ठ सम्बन्ध है।"[61]

इससे आगे सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा ने बने बनाए चौखटे तोड़े और सामाजिक, साहित्यिक आन्दोलनों में शामिल हुई। 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' की कविता की लेखिका ने कहानियों में रूढ़ियों को तोड़ती स्त्री के साहस और निर्णय लेने की क्षमता को कलमबद्ध किया। राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी और अनवरत जेल यात्रा के बावजूद उनके तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए- बिखरे मोती (1932) उन्मादिनी (1934) तथा सीधे-सादे चित्र (1947) इन कथा संग्रहों मे कुल 38 कहानियाँ है। उनकी कहानियों में देश-प्रेम के साथ-साथ समाज को, अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करने के लिए संघर्षरत नारी की पीड़ा और विद्रोह का स्वर मिलता है। सुभद्रा जी की सभी कहानियों को हम एक तरह से सत्याग्रही कहानियाँ कह सकते है। उनकी स्त्रियाँ सत्याग्रही स्त्रियाँ है। दलित चेतना और स्त्रीवादी विमर्श को उठाने वाली सुभद्रा कुमारी चौहान हिन्दी की पहली कहानीकार है। यथा -"दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी।"[62]

मानसिक, शारीरिक और आर्थिक दृष्टि से उपेक्षित प्रताड़ित स्त्री की अन्य समस्याओं की तुलना में सबसे ढ़का हुआ पक्ष यौन अतृप्ति का था। जिसे लेकर मुँह

खोलने की दूर-दूर तक कोई संभावना नहीं हुआ करती है। इस बारे में मृदुला गर्ग लिखती है- "स्त्री की यौन-इच्छा का खुलेआम में चित्रण कृष्णा सोबती से ही शुरू हो चुका था। बाद की लेखिकाओं ने स्त्री की यौन अस्तित्व के साथ-साथ उनके मानवी रूप और सामाजिक गरिमा को भी रखना शुरू किया है जिसमें मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, नासिरा शर्मा, राजी सेठ, ममता कालिया, नमिता सिंह, मृणाल पाण्डे, चित्रा मुद्गल और सदी के अन्तिम दशक में उभरकर आने वाली रचनाकार मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी तथा जया जादवानी आदि का नाम आता है।"[63]

कहानी साहित्य में नारी विमर्श चेतना के स्तर पर उभरकर आता है जिसमें दो अंग मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होते है- सामाजिक चेतना तथा नारी की निजी चेतना। महिला रचनाकारों ने पिछले तीन-चार दशकों से नारी की इसी निजी चेतना, सामाजिक स्थिति तथा उसकी छवि को अपने अनुभव के द्वारा अंकित किया है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कहानी साहित्य में यही चेतना नए भाव बोध के साथ प्रस्तुत होती है। भारतीय वाङ्मय में स्त्री को अगर पुरुष अनुगामिनी व पूज्य माना गया है तो उसका स्वाभाविक मानवीय रूप ही गायब कर दिया गया है या फिर उसे 'पाप का द्वार', महाठगिनी, ताड़न का अधिकारी कहकर इतना हेय बना दिया गया, कि समाज में वे सिर्फ पुरुषों की गुलाम बनकर रहने को अभिशप्त हो गई। इस प्रकार युगान्तरों के उत्थान-पतन की तरंगों में झूलती हुई भारतीय नारी को कभी तो सम्मान का स्वर्णिम कगार मिला तो कभी पतन की मंझधार। अबला कहकर उसका अपमान किया जाता रहा है परन्तु धीरे-धीरे उसे अपने अस्तित्व का बोध हुआ तथा उसमें आत्म-गौरव के भावों का विकास प्रारंभ हुआ समाज-सुधार आन्दोलनों के फलस्वरूप स्त्री में चेतना का संचार हुआ तथा उसकी राजनीतिक, सामाजिक और पारिवारिक स्थिति में परिवर्तन हुए।

ब्रिटिश राज्य के प्रभाव में शिक्षा पद्धति का प्रचार प्रसार हुआ। शिक्षा के कारण भारतीय जीवन पद्धति में बदलाव आ गया। आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और चिन्तन शैलियों के प्रसार के फल स्वरूप भारत में राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक जागरण

हुआ। इसी की एक अभिव्यक्ति यह थी कि मध्ययुगीन सामाजिक, उत्पीड़न से भारतीय नारी सदियों से त्रस्त थे उससे उसे मुक्ति मिली है।

सदियों से उपेक्षित, शोषित, पीड़ित नारी की स्थितियों का चिन्तन हुआ और उसे दयनीय स्थिति से बाहर निकलने का प्रयास किया गया, जिसमें राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द सेन, महात्मा गाँधी, एनीबिसेन्ट, सरोजनी नायडू, ज्योतिबा फूले, सावित्री बाई फूले, डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि विद्वानों ने स्त्री को मुक्त कराने के लिए शिक्षा द्वार खोल दिये। साथ ही सती प्रथा, पर्दा प्रथा और बाल-विवाह, विधवा नारी की स्थिति आदि विषयों पर मनन-चिन्तन कर उसका विरोध किया है।

आज लेखिकाएँ अपने जीवन का समग्र चित्रण बेबाकी से अपनी आत्मकथाओं में कर रही है। दिनेश नन्दिनी डालमिया की आत्मकथा चार भागों में है जिसमें मारवाड़ी परिवार के अन्त: पुर का चित्रण है। प्रसिद्ध पत्रकार झुनझुनवाला ने सात दशकों की जीवन गाथा 'कुछ कही कुछ अनकही' के रूप में लिखी है। अनामिका होलडोला 'पहिए उर्फ एक औरत का जर्नल' में जीवन के यथार्थ को नाटकीय ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिकट', अजीत कौर की 'खानाबदोश' बहुत चर्चित आत्मकथा रही। लेखिकायें स्त्री की स्वतन्त्रता की आकांक्षा को बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से उजागर करते हुए कहती है कि स्त्रियाँ तीर्थ और पर्यटन का आग्रह करती है और तीर्थ के नाम पर घर छोड़कर इस प्रकार भागा जाती है, जैसे पिंजडे में बन्द हुआ तोता अवसर पाकर भाग निकलता है। उनका तीर्थ का आग्रह यह बताता है कि वे बन्द रहना नहीं चाहती है। मनुष्य की दमित आकांक्षाओं के स्वप्न सामने है जो सिर्फ अपनी ही नहीं, समूचे स्त्री समाज की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति कर रही है।

यह स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य में स्त्री चेतना सर्वाधिक चर्चित विषय रहा है। सीमोन द बोउआर की 'द सैकण्ड सेक्स' का हिन्दी अनुवादक प्रभा खेतान ने स्त्री विमर्श व स्त्री चेतना की नींव तैयार की और इससे पहले सामन्ती उपदेश ने इसका आधार बनाया और इन्हीं से प्रेरित होकर आधुनिक लेखिकाएँ स्त्री के प्रति समाज की

मानसिकता व रूढ़ियों पर आधारित पारिवारिक बन्धनों से मुक्ति की आकांक्षा में प्रयत्नशील नजर आती है।

लेखिकाओं की प्रारंभिक पुरुष विरोधी मानसिकता में परिवर्तन आया है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध व बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के महिला लेखन के स्त्री का विषय पुरुष होकर सामाजिक रूढ़ियाँ हुआ करती थी, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में मुक्ति की आकांक्षा को लेखिकाओं ने अपना विषय बनाया जो कि सराहनीय प्रयास है।

हिन्दी कथा साहित्य में लेखिकाओं ने संघर्ष यात्रा जारी रखी, स्वानुभूत भी स्व और अपनी जातीय पहचान को समझने व धार देने की कोशिश भी की। महादेवी वर्मा अपने निबन्धों द्वारा विचारधारा को समाज के सम्मुख रख रही थी। मन्नू भण्डारी द्वारा नारी द्वन्द्वगत स्थिति का चित्रण हो रहा था, जिसे यथार्थ वादी भी कहा जा सकता है। कृष्णा सोबती स्त्री मानस की ग्रन्थि एवं गुत्थी को खोलने की कोशिश में अपने रचनाकर्म को गति दे रही थी। प्रभा खेतान ने छिन्नमस्ता और पीली आंधी उपन्यासों में पुरुषों की रूग्ण मानसिकता के खिलाफ आवाज उठाकर आर्थिक स्वतन्त्रता को स्त्री-मुक्ति का सशक्त आधार बताया।

निष्कर्ष: -

अनेक लेखिकाओं ने नारी अस्मिता, समाज व परिवार में नारी की भूमिका, स्त्री पुरुष सम्बन्ध, नारी देह, नारी शोषण, नारी व अर्थतंत्र तथा स्त्री की बदलती मानसिकता जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों को स्थान देते हुए कथा साहित्य को नए -नए आयाम देने की दिशा में सफलता प्राप्त की। हिन्दी कथा साहित्य में स्त्रीवादी चिन्तन की नई सैद्धान्तिकी भी प्रस्तुत की है जिसकी वजह से स्त्री से जुडें अनेक महत्वपूर्ण पहलू आज साहित्य में प्रमुख तौर पर विमर्श की मांग कर रहे है। आज के नवीन आधुनिक वातावरण में महिला लिव इन रिलेशनशिप, या समलैंगी संबंधों को बेहिचक स्वीकार कर रही है। यह नारी की सोच में आये बदलाव के कारण ही देखने को मिला है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 भविष्य का स्त्री विमर्श, ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।

2 अनामिका का काव्य आधुनिक स्त्री विर्मश : स्त्री विमर्श अवधारणा एवं स्वरूप, मंजू रस्तोगी वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 11

3 जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ. 98

4 तसलीमा नसरीन, औरत का कोई देश नहीं, पृ. 24

5 रोहिणी अग्रवाल, साहित्य की जमीन और स्त्री मन के उच्छवास, पृ. 17

6 तसलीमा नसरीन, औरत का कोई देश नहीं, पृ. 208

7 ध्रुवा धाक्ध्रुवा पृथ्वी ध्रुव विश्वमिदं जगत्। ध्रुवास पर्वता इमें ध्रुवा स्त्री पति कुल इयम्। साम मेत्र ब्राहमण 1/3/7 नारी तेरे अनेक रूप, सम्पादक क्षेमेन्द्र सुमन पृ. 07

8 अर्धो ह या एष आत्मनों यज्जाया..... यावज्ज्या न विन्दते असवो हि तावद्भवति। शतपथ ब्राहमण 5/2/1/10 नारी तेरे अनेक रूप, सम्पादक क्षेमेन्द्र सुमन पृ. 9

9 प्रभा खेतान, (अ.) स्त्री : उपेक्षिता, पृ. 121

10 स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास, सम्पादक- डॉ. संजय गर्ग पृ. 142 ।

11 स्त्री विर्मश भारतीय परिपेक्ष्य, डॉ. के.एम. मालती पृ. 10

12 महादेवी समग्र साहित्य, सम्पादक निर्मला जैन, पृ. 293

13 स्त्रिय: अशास्यं मन: ऋग्वेद 8/33/17

14 उतो अह कुतं रघुम्, ऋग्वेद 8/33/17

15 ऋग्वेद 17/85/37

16 बि. का. राजवाडे, भारतीय विवाह संस्था का इतिहास, पृ. 97

17 डॉ. सौ. मगंल कप्पीकेरे, साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी पृ. 4

18 बलदेव वंशी, भारतीय नारी सन्त परम्परा पृ. 9

19 डॉ. अमरनाथ, नारी का मुक्ति संघर्ष, पृ. 59

20 स्कन्दपुराण, ब्रहमखण्ड, धर्मारण्य परिच्छेद, अध्याय 7

21 पद्म पुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय 47, श्लोक 55

22 डॉ. संजय गर्ग, स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास सम्पादक, पृ. 63

23 सम्पादक-उमाशंकर मेहता, संदर्भी दंपत्ति, अगस्त 1930 पृ. सं.-66

24 नारी, सम्पादक-सुभद्रा कुमारी चौहान कुमारी, हरदेवी मलकानी, सितम्बर 1947, पृ. 27 एक अंश

25 जीवन विज्ञान, सं. चन्द्र राज भंडारी, अप्रैल 1946 पृ. 73

26 लेखक, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, माँ नारी तेरे अनेक रूप, सम्पादक- क्षेमेन्द्र सुमन पृ. 45

27 नारी महिमा, नारी तेरे अनेक रूप, सम्पादक- क्षेमेन्द्र सुमन पृ. 11

28 नारी महिमा, नारी तेरे अनेक रूप, सम्पादक- क्षेमेन्द्र सुमन पृ. 11।

29 जॉन स्टुअर्ट मिल, अनु. प्रगति सक्सेना, स्त्रियों की पराधीनता, पृ. 6 भूमिका

1 करेन्ट जर्नल, सं डॉ. राजीव कुमार श्रीवास्तव, पृ. 481

31 करेन्ट जर्नल, सं, डॉ. राजीव कुमार श्रीवास्तव, पृ. 481

32 करेन्ट जर्नल, सं डॉ. राजीव कुमार श्रीवास्तव, पृ. 481

33 करेन्ट जर्नल, सं डॉ. राजीव कुमार श्रीवास्तव, पृ. 482

34 करेन्ट जर्नल, सं डॉ. राजीव कुमार श्रीवास्तव, पृ. 482

35 करेन्ट जर्नल, सं डॉ. राजीव कुमार श्रीवास्तव, पृ. 482

36 करेन्ट जर्नल, सं. डॉ. राजीव कुमार श्रीवास्तव, पृ. 483

37 करेन्ट जर्नल, सं. डॉ. राजीव कुमार श्रीवास्तव, पृ. 483

38 करेन्ट जर्नल, सं. डॉ. राजीव कुमार श्रीवास्तव, पृ. 483

39 स्त्रिय: आशास्यं मन: ऋग्वेद 8/33/17

40 उतो अह क्रंत रघुम्'' उपर्युक्त।

41 न वै स्त्रेणानि संख्यानि सन्ति साला वृकार्णा हृदयानि एर्ता ऋग्वेद 10/95/15

42 अध: पश्यस्व मा उपरि सन्तरां पादको हर। मा ते काशप्लकी दृशन् स्त्री हि ब्रम्हा बभूविथ।'' ऋ. 8/33/19 यो वां यज्ञभि: आवृत: अधिवस्वा वधू: इव।'' ऋ 8/26/13

43 अनृतं स्त्री अनृतं वैषा करोति या पात्यु: क्रीता सतीं अथान्येश्चरति।'' मैत्रायणी संहिता 1/10/1

44 नास्ति स्वीणां क्रियामन्वैरिति धर्मे व्यवस्थित:। निरिन्द्रियाहयमनत्राश्च स्त्रियोअनुतंमिति स्थित:।'' मनुस्मिृति 9/18

45 नास्ति स्त्रीणां पृथक यज्ञों न व्रतं नाप्युयांषितम्। पतिं शुश्रूयते येन तेन स्वगेर्ं महीवते।।'' मनुस्मृति 5/55

46 पतिं जपस्तपस्तीर्थ यात्रा प्रव्रज्या मन्त्र साधनम्। देवताराधनम् चैत्र स्वीशुद्रपतनानि शट्।।'' मनुस्मृति 5/134

47 पतिं तीर्थ स्नानार्थिनी नारी पति पादोदकं पिबेत''मनु 5/135

48 पतिं पिता रक्षति कौमारे भर्तारक्षति यौवने। रक्षन्ति सिविरे पुत्रा: न स्त्री स्वातन्त्रयमहंति।'' मनु. 9/3

49 पतिं मनुस्मृति 9/45

50 देखिए, मानुषी, अंक 8, पृष्ठ 29

51 पतिं रजस्वला पुष्करं तीर्थ चाण्डाली तु स्वयं काशी चर्म प्रयाग: स्याद्रजकी मथुरा मता, अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता।''

52 ढोल गँवार शुद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी'' नारी की झाँई पडे अन्धा होत भुजंग। कबिरा तिनकी कौन गति, जो नित नारी को संग।'' नर निसावे तीन गुन जो नर पासे होय भक्ति मुक्ति निज ध्यान में पैठ सके नहिं कोय।''

53 क्षमा शर्मा, स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य, पृ. 5

54 जॉन स्टुअर्ट मिल, अनु. प्रगति सक्सेना, स्त्रियों की पराधीनता, पृ. 19

55 जॉन स्टुअर्ट मिल, अनु. प्रगति सक्सेना, स्त्रियों की पराधीनता, पृ. 19

56 डॉ. प्रवीण शुक्ला, महिला सशक्तिकरण : बाधाएँ एवं संकल्प, पृ. 17 से उद्धृत

57 डॉ. प्रवीण शुक्ला, महिला सशक्तिकरण : बाधाएँ एवं संकल्प, पृ. 18 से उद्धृत

58 डॉ. प्रवीण शुक्ला, महिला सशक्तिकरण : बाधाएँ एवं संकल्प, पृ. 20-21

59 रोहिणी अग्रवाल, साहित्य की जमीन और स्त्री मन के उच्छवास, पृ. 16, 17

60 डॉ. प्रवीण शुक्ला, महिला सशक्तिकरण : बाधाएँ एवं संकल्प, पृ. 23

61 कमल कुमार कुक्ता, स्त्री सशब्द विवेक और विभ्रम, पृ. 175

62 योगेन्द्र दत्त शर्मा, आजकल (मार्च 2008), पृ. 10

63 सम्पादक अजय कुमार गुप्ता, गगनांचल (अक्टू-दिस. 2008) पृ.34